वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 426
ISBN 978-93-84003-17-3

जिनागम रहस्य

–संकलनकर्त्री–

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य
प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
चारित्रचन्द्रिका, तीर्थोद्धारिका, राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, सिद्धान्तचक्रेश्वरी,
250 से अधिक ग्रंथों की लेखिका, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
वाग्देवी, पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में निर्मित सुमेरु पर्वत के जिनबिम्बों के 35 वें प्रतिष्ठापना दिवस
वैशाख शु. सप्तमी (6 मई 2014) के उपलक्ष्य में परम पूज्य दिव्यशक्ति
चारित्रचन्द्रिका गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के
अमृत महोत्सव 2013–2014 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
500 प्रतियाँ	वैशाख शु. सप्तमी, 6 मई 2014	120/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना आदि की विषय-सूची

१.	सम्पादकीय	६
२.	आद्य वक्तव्य	७
३.	धर्म की उत्पत्ति	१०
४.	श्री गौतम स्वामी द्वारा प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण	१०
५.	श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है (चार्ट)	१४
६.	प्रस्तावना	२२
७.	दो शब्द	२७
८.	हार्दिक उद्गार	२९
९.	प्रयुक्त ग्रंथों के नाम	३०
१०.	पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	३२
११.	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	४०
१२.	वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	४६
१३.	स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि	४७
१४.	शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण	४८

ग्रंथ विषय सूची

१.	**मंगलाचरण**	१
	१. णमोकार महामंत्र	५
	१. णमोकार मंत्र के अक्षर–पद–मात्रा आदि का वर्णन	७
	२. णमोकार मंत्र में पाठ भेद (विभिन्न ग्रंथों में)	१०
२.	**चत्तारि मंगल में पाठ भेद**	१५
३.	**गाथाएँ या सूत्र अपरिवर्तनीय हैं**	१८
४.	**गाथाओं में पाठ भेद**	२३
५.	**पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथ प्रमाण हैं**	२४
६.	**श्री गणधरवलय मंत्र**	२९
	गणधरवलय मंत्र में अन्तर के प्रमाण का चार्ट (विभिन्न ग्रंथों से)	३०

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
७.	**नव पदार्थ**	३४
	नव पदार्थ के क्रम में अन्तर का चार्ट	३५
८.	**बारह तप**	३६
	बारह तप के क्रम में अन्तर का चार्ट	३७
९.	**बंध प्रत्यय**	३८
	बंध प्रत्यय–बंध के कारण में अंतर का चार्ट	४०
१०.	**धर्मध्यान**	४१
	धर्मध्यान के भेद में अन्तर का चार्ट	४३
११.	**ज्ञान और दर्शन के नामों में अन्तर** (विभिन्न ग्रंथों में)	४४
१२.	**पच्चीस भावना**	४८
१३.	**सोलहकारण भावना**	५२
	षट्खण्डागम ग्रंथराज एवं तत्त्वार्थसूत्र में कथित सोलहकारण भावनाओं में अन्तर का चार्ट	५३
१४.	**द्वादशानुप्रेक्षा**	५४
	द्वादशानुप्रेक्षा के क्रम में अन्तर का चार्ट	५५
१५.	**दशलक्षण धर्म में–सत्यधर्म और शौच धर्म**	५६
१६.	**चौंतीस अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य** (तिलोयपण्णत्ति, आदिपुराण, नंदीश्वर भक्ति आदि में)	५८
१७.	**आचार्यों के ३६ गुण**	६७
१८.	**साधु के २८ मूलगुण**	७१
१९.	**श्रावक के बारह व्रत**	७२
	१. तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत में अन्तर (भिन्न–भिन्न श्रावकाचारों में) चार्ट	७८
	२. **चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना**	८२
	३. चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना के प्रमाण (अनेक श्रावकाचारों में) चार्ट	८३
२०.	**श्रावक के ४ धर्म**	८४

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
२१.	**गृहस्थ के ६ आर्यकर्म**	८५
२२.	**पूजा के प्रकार (भेद)**	८६
२३.	**सम्यग्दर्शन का लक्षण**	८९
२४.	**श्रावक के ८ मूलगुण**	९२
	श्रावक के अष्ट मूलगुण का चार्ट (अन्तर–विभिन्न ग्रंथों में)	९४
२५.	**धर्म का लक्षण**	९५
२६.	**वर्ष के ३६६ दिन**	९७
२७.	**संख्या का मान आगम में २४ अंक प्रमाण है।**	९८
२८.	**सोलह स्वर्गों के इन्द्र**	१०२
२९.	**सोलह स्वर्गों के देवियों की आयु**	१०६
३०.	**चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या का चार्ट**	१०८
	(अन्तर–उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण में)	
३१.	**चौबीस तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियों का चार्ट**	११४
	(अन्तर –उत्तरपुराण, हरिवंश पुराण में)	
३२.	**सम्मेदशिखर टोंक से मुक्तिप्राप्त मुनियों की संख्या का चार्ट**	११८
	(अन्तर–सम्मेदशिखर माहात्म्य, सम्मेदशिखर वन्दना एवं सम्मेदशिखर टोंक पूजन में)	
३३.	**चौबीस तीर्थंकर के माता पिता के नाम का चार्ट**	१२१
	(अन्तर–तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण, महाशांतिधारा, प्रतिष्ठातिलक में)	
३४.	**चौबीस तीर्थंकर के यक्ष–यक्षी के नाम का चार्ट**	१२३
	(अन्तर–तिलोयपण्णत्ति, प्रतिष्ठातिलक, महाशान्तिधारा, वास्तुसार में)	
३५.	**प्रशस्ति**	१२५
३६.	**श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय**	१२६
३४.	**पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्‌गार**	१२८
	(दशभक्त्यादि संग्रह से)	

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पाठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

ऊँ नमः मंगलं कुर्यात् ह्रीं नमश्चापि मंगलं।
मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नमः सुमंगलम्।।

"स्वाध्यायः परमं तपः" आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है। श्रावक के छह आवश्यक में स्वाध्याय एक आवश्यक कर्तव्य है। ध्यान और अध्ययन साधु के आवश्यक कर्तव्य हैं। स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। कर्मों का क्षय होता है। पुण्य का आस्रव और कर्मों की निर्जरा होती है। चिन्तामणि रत्न के समान ग्रंथ का स्वाध्याय इच्छित फल को प्रदान करता है। ज्ञान से बढ़कर कोई वस्तु संसार में नहीं है। यशस्तिलचम्पू महाकाव्य में लिखा है—

ज्ञानं पूज्यं तपोहीनं, ज्ञानहीनं तपोऽर्हितम्।
यत्र द्वयं स देवः स्याद्, द्वि हीनो गणपूरणः।।

अर्थात् जिसके तप न हो और मात्र विशिष्ट ज्ञान ही हो तो वह भी पूज्य है। जिसके (विशिष्ट) ज्ञान न हो, केवल तप या चारित्र ही हो, तो वह भी पूज्य है और जिस व्यक्ति में (विशिष्ट) ज्ञान व तप दोनों हो, उसे तो साक्षात् देव ही समझना चाहिए।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, श्रुतप्रकाशिका, तीर्थोद्धारिका, दो बार डी. लिट् . की मानद उपाधि से अलंकृत, न्याय प्रभाकर, आगमनिष्ठ, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करके बाल, युवा, वृद्ध, विद्वान सभी की योग्यतानुसार बालविकास से लेकर अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे ग्रंथों का लेखन, सृजन किया है। भगवान महावीर के शासन में पूज्य माताजी सर्वप्रथम आर्यिका हैं, जिन्होंने इतने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जिनागम रहस्य' वर्तमान में हो रही शास्त्र में विसंगतियों को देखते हुए बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति है। इसे पढ़कर सभी भव्यजीव अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करेंगे और आगम के ज्ञान से अपने ज्ञान को वृद्धिंगत करेंगे। पूर्वाचार्यों की कृति में संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन करने का साहस नहीं करेंगे ऐसी मंगल भावना है।

सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति करते हुए, उनकी कृपा प्रसाद से हम सभी लोग अपने ज्ञान को वृद्धिंगत करते हुए, शीघ्रातिशीघ्र आत्मा में केवलज्ञान प्रगट होने की भावना भाते रहें जिससे एक न एक दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला इसी तरह से सत्साहित्य का, महान ग्रंथों का प्रकाशन कर, जिनधर्म की प्रभावना में अग्रसर हो। मुझे भी एकदिन पूर्ण श्रुतज्ञान की प्राप्ति हो यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और आगे भी अपने ज्ञानरूपी आलोक से सभी भव्यजीवों को प्रकाशित करती रहें, यही मंगल कामना है।

आद्य वक्तव्य

–गणिनी ज्ञानमती

'जिनागम रहस्य' यह ग्रंथ मेरे द्वारा संकलित ग्रंथ है। इसमें तीस से अधिक विषय लिये हैं। इस ग्रंथ के संकलन में 'जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आगम जो कि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत हैं उन्हें ही 'जिनागम'–जैन आगम संज्ञा है।' उन जैनग्रंथों के रहस्य को समझना है।

दूसरा मेरा अभिप्राय इस ग्रंथ के संकलन में यह है कि–पच्चीस, तीस वर्षों से किन्हीं–किन्हीं ग्रंथों में कुछ विद्वान या कुछ साधुवर्ग भी संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन करने लगे हैं। उदाहरण के लिये देखिये—

श्रीगौतमस्वामी द्वारा कृत–उनके मुखकमल से विनिर्गत दैवसिक–रात्रिक व पाक्षिक प्रतिक्रमण– सूत्र–दण्डक हैं। जिन्हें हम सभी साधुवर्ग प्रतिदिन दिन में दो बार व प्रतिमाह में दो बार पढ़ते हैं– विधिवत् प्रतिक्रमण करते हैं। उन प्रतिक्रमण सूत्रों में संशोधन, परिवर्तन व परिवर्धन देखा जा रहा है। इस प्रतिक्रमण के संशोधन आदि ने हृदय को झकझोर दिया है। मुझे बहुत ही कष्ट हो रहा है। इस कार्य में विद्वानों का जो भी अभिप्राय रहा हो, मैं नहीं सोच सकती, किन्तु 'प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी' नाम से मूल संस्कृत में प्रकाशित इन प्रतिक्रमणों का यह टीका ग्रंथ है, श्री प्रभाचंद्राचार्य ने इन प्रतिक्रमण सूत्रों पर संस्कृत टीका लिखी है। हो सकता है उन संशोधन आदि करने वाले विद्वानों को टीका ग्रंथ पढ़ने को न मिला हो।

इस टीका ग्रंथ के आधार से प्रतिक्रमण सूत्रों में संशोधन, परिवर्तन आदि उचित नहीं प्रतीत होता है।

ऐसे ही अनेक ग्रंथों में परिवर्तन आदि होने लगे हैं। यहां कतिपय विषय प्रस्तुत हैं—

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'वीरभक्ति' से पूर्व नव पदार्थों का क्रम अलग है। यथा—

''से अभिमद–जीवाजीव–उवलद्ध–पुण्णपाव–आसव–संवर–णिज्जर–बंध–मोक्ख–महिकुसले।''

''जीवाजीवपुण्ण–पाव–आसव–संवर–णिज्जरा–बंध–मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।'' (षट्खण्डागम धवला टीका पु. १३ पृ. ६४।)

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता।

समयसार की गाथा में—भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसव संवरणिज्जा बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३।।

श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में क्रम अलग रखा है—

'जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।४।।'

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।

उसी के अनुसार प्रतिक्रमण में परिवर्तन कर दिया है। समयसार ग्रंथ में गाथा के अनुसार ही अधिकार–अध्याय लिये हैं। क्या अधिकार के क्रम भी बदले जा सकते हैं ? आदि।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में बारहतप के क्रम को तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार बदल दिया है।

एक जगह तो 'अष्टमी के प्रतिक्रमण' में 'णवसु बंभचेरगुत्तीसु'' आदि पूरे दण्डक पाठ को बदल कर संख्या के क्रम से अपने मन से किया गया है। देखें इसी ग्रंथ में पृ. २२ पर।

इन सभी प्रकरणों को भी प्रभाचंद्राचार्य कृत टीका में देखें तो उन्होंने वहाँ जैसे का तैसा ही क्रम रखकर उन सूत्रों की टीका की है। देखें–इसी ग्रंथ में पृ. १९–२०–२१ पर।

मैंने जो स्वाध्याय करके पाया है कि पूर्वाचार्यों के पाठभेदों में परिवर्तन न करके दोनों को प्रमाण मानने की। उसे आप देखें—

समयसार में प्रथम मंगलाचरण की गाथा में श्री अमृतचंद्रसूरि ने 'धुवमचलमणोवमं' पाठ लिया है और जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में 'धुवममलमणोवमं' पाठ रखा है। पुनः टीका में श्री जयसेनाचार्य ने कहा है कि—

'**अमलं** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेन शुद्धस्वभावसहितत्वेन च निर्मलां। अथवा **अचलं** इति पाठांतरे द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारभ्रमणरहितत्वेन स्वस्वरूपनिश्चलत्वेन च चलनरहितामचलां।

भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्मरूप मल से रहित होने से तथा शुद्ध स्वभाव से सहित होने से वह अमल–निर्मल है। अथवा '**अचलं**' ऐसा भिन्न पाठ मानने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच प्रकार के संसार के भ्रमण से रहित होने से और स्वस्वरूप में निश्चल होने से वह गति चलन रहित अचल है। संपूर्ण उपमाओं से रहित होने से निरुपम है और स्वभाव से सहित होने से अनुपम है। ऐसी सिद्ध अवस्था को जो प्राप्त हुए हैं।

श्रीजयसेन आचार्यदेव ने यह नहीं निर्णय लिया कि 'अमल' पाठ श्री कुंदकुंददेव के मुख से निर्गत है प्रत्युत 'पाठांतर' कहकर दोनों के अर्थ कर दिये हैं।

ऐसे ही धवला टीका में षट्खण्डागम जैसे महान ग्रंथों में भी जहाँ दो आचार्यों के दो मत आ गए हैं, वहाँ कैसा समाधान है देखिए—

षट्खण्डागम धवला पुस्तक १ में पृ. १९७ पर कषायों के क्षय के क्रम में दो आचार्यों के अलग-अलग मत आये, तो प्रश्न हुआ कि एक ही कथन सत्य होगा न कि दोनों ?.....

तब श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं—

''दोण्ह वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे ? केवली सुदकेवली वा जाणादि ण अण्णो तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कालाइरिएहि वज्जभीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो अण्णहा वज्जभीरुत्त-विणासादो त्ति।''

शंका—दोनों प्रकार के वचनों में से किसी वचन को सत्य माना जाये ?

समाधान—इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है इसलिये पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिये अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जायेगा।'' (धवला पु. १ पृ. २२२, २२३)

शंका—बादर निगोद जीवों से प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं दी ?

समाधान—'**गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।**' यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।'' (धवला पु. ७ पृ. ५४१)

आश्चर्य होता है कि धवला टीकाकार ने कह दिया कि इसका समाधान 'श्री गौतम स्वामी से पूछना

चाहिए।' किन्तु आज श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित प्रतिक्रमण पाठ में ही परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन देखा जा रहा है, यह उचित नहीं है।

मूलाचार में देवियों की आयु के बारे में अंतर है। यथा—

इसकी टीका में श्री वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य कहते हैं—

''.....द्वौ अपि उपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशात्, द्वयोर्मध्ये एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र संदेहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति संदेहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।'' (मूलाचार पर्याप्त्यधिकार गा. ७९, ८०।)

दोनों ही उपदेश ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपि यह निश्चित है कि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिये। इस विषय में संशयमिथ्यात्व भी नहीं है, क्योंकि 'जो अर्हंतदेव द्वारा प्रणीत है वही सत्य है' इस प्रकार से संशय का अभाव है, क्योंकि छद्मस्थों को यह विवेक करना शक्य नहीं है इसलिये मिथ्यात्व के भय से ही दोनों को ग्रहण करना चाहिये।

इन सभी प्रमाणों से यह निश्चित हो जाता है कि हम और आप सभी साधु-साध्वी, विद्वान् तथा श्रावकगण किसी भी ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन का साहस न करें, जहाँ ऐसे दो तरह के प्रकरण हों, वहाँ वैसा ही रखें व श्रद्धान करें। यदि अपना मन्तव्य भी देना है, तो टिप्पण में दे सकते हैं।

इस विषय में ''तीर्थंकर बनने के नियम'' जैनआगम में नवपदार्थ, ''जिनागम में द्वादश तप' व 'जिनागम में द्वादशानुप्रेक्षा' ये चार पुस्तकें मैंने पृथक् भी विस्तार से संकलित करके प्रकाशित करायी हैं। श्री गौतमस्वामी विरचित प्रतिक्रमण दण्डक आदि ग्रंथ, षट्खंडागम ग्रंथ, समयसार, मूलाचार, ज्ञानार्णव तथा तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों के प्रकरण ज्यों की त्यों उद्धृत' कर दिये हैं, उन पुस्तकों को भी आप पढ़ें एवं अपने श्रद्धान को, श्रीगौतमस्वामी गणधर देव तथा महान्-महान् आचार्यों के वचनों को पूर्ण प्रमाणीक मानकर सम्यग्दर्शन दृढ़ रखें, यही मेरी प्रेरणा है व मंगल भावना है।

धर्मतीर्थ की उत्पत्ति

''**वर्धमान भगवान ने तीर्थ की उत्पत्ति की है।**[१]'' अठारह भाषा और सात सौ क्षुद्र भाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों के प्ररूपक अर्थकर्ता हैं'' तथा बीज पदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं।।[२]''

संपहि वड्ढमाणतित्थगंधकत्तारो वुच्चदे–

दिव्यध्वनि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में आया है।

जोयणपमाणसंट्ठिद–तिरियामरमणुव णिवहपडिबोधो।
मिदमधुरगभीतरा–विसदविसयसयल भासाहिं।।६०।।
अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ।।६१।।
एदासिं भासाणं तालुवंदतोट्ठकंठवावारं।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकर–भासो।।६२।।[३]

एक योजन प्रमाण तक स्थित तिर्यंच देव और मनुष्यों के समूह को बोध प्रदान करने वाली भगवान की दिव्यध्वनि होती है। यह दिव्यध्वनि मृदु–मधुर, अतिगंभीर और विशद–स्पष्ट विषयों को कहने वाली संपूर्ण भाषामय होती है। यह संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह भाषा और सात सौ लघु भाषाओं में परिणत होती हुई, तालु–ओंठ–दाँत तथा कंठ के हलन–चलनरूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजीवों को आनंदित करने वाली होती हैं ऐसी दिव्यध्वनि के स्वामी तीर्थंकर भगवान होते हैं।।६०–६१–६२।।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं–

''उक्त पाँच आस्तिकायादिक क्या हैं ?'' ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से सन्देह को प्राप्त हुए, पाँच सौ, पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से गर्व रहित हुए, बुद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त वर्धमान भगवान् के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्श पूर्वक वंदना करके एवं हृदय से जिनभगवान् का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहूर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्रवाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग आदि बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग की आदि में प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति गणधर देव भट्टारक श्री वर्धमान स्वामी के तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। कहा भी है–

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पडिवदुपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।४०।।

---

1. वड्ढमाण भडारएण तित्थमुप्पइदं (धवला पु. 9, पृ. 113)। 2. धवला पु. 9, पृ. 127। 3. तिलोयपण्णत्ति अध्याय 1, गाथा 60-61।

''वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई[1]।

षट्खंडागम ग्रंथ में श्रीवीरसेनस्वामी कहते हैं–

''तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम–जणिदचउ–रमलबुद्धिसंपण्णेण ब्रह्मणेण गोदमगोत्तेण सयलदुस्सुदि–पारएण जीवाजीवविसयसंदेह–विणासणट्ठ मुवगयवड्ढमाण–पादमूलेण इंदिभूदिणावहारिदो[2]।।२।।

इस प्रकार केवलज्ञानी भगवान महावीर के द्वारा कहे गये पदार्थ को उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययरूप निर्मल ज्ञान से युक्त संपूर्ण अन्यमतावलंबी वेद–वेदांग में पारंगत, गौतमगोत्रीय ऐसे इन्द्रभूति ब्राह्मण ने जीव–अजीव विषयक संदेह को दूर करने के लिए श्रीवर्द्धमान भगवान के चरणकमल का आश्रय लेकर ग्रहण किया अर्थात् प्रभु की दिव्यध्वनि को सुना।

इसीलिए भगवान महावीर 'अर्थकर्ता' कहलाये हैं।

'पुणो तेणिदंभूदिणा भावसुदपज्जय–परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथणमेक्केण चेव मुहूत्तेण रयणा कदा।।[3]

पुनः उन इन्द्रभूति गौतमस्वामी ने भावश्रुत पर्याय से परिणत होकर बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की रचना एक ही मुहूर्त में कर दी।

सारांश यह है कि आज से पच्चीस सौ सत्तर (२५७०)[4] वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी थी यही प्रथम देशना दिवस–'वीरशासन जयंती' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त करके द्वादशांग श्रुत की रचना की थी जो कि मौखिक मानी गई है उसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता है।

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार आज कोई भी द्वादशांग या अंगबाह्य के ग्रंथ नहीं हैं क्योंकि इनको लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता था। परम्परागत आचार्यों ने जो कुछ मौखिक श्रुतज्ञान गुरुवों से प्राप्त किया, कालांतर में श्रीधरसेनाचार्य के शिष्य पुष्पदंत–भूतबलि नाम के दो आचार्यों ने षट्खंडागम ग्रंथ को लिपिबद्ध करके रचना की है। ऐसा इन्द्रनंदि आचार्य आदि ने श्रुतावतार आदि ग्रंथों में लिखा है।

इसी प्रकार श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत ये महान रचनायें आज वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। **चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमणदण्डकसूत्रादि**। ये ग्रंथ मौखिकरूप से आचार्यों को प्राप्त होते रहे हैं पुनः किन्हीं महान आचार्यों ने इन्हें लिपिबद्ध करके हमें और आप सभी भव्यात्माओं के लिये सुरक्षित रखा है।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''णमो जिणाणं''** आदि गणधरवलयमंत्र हैं एवं दैवसिक–पाक्षिक प्रतिक्रमण में **''यः सर्वाणि चराचराणि''** वीरभक्ति पाठ है। इन **'णमो जिणाणं'**। आदि गणधरवलय मंत्रों को श्रीभूतबलि आचार्यदेव ने षट्खंडागम के अंतर्गत तृतीय 'वेदनाखंड' के रचते समय मंगलाचरणरूप में लिया है। जिनकी विस्तृत टीका (पुस्तक नवमी में) टीकाकार श्री वीरसेनाचार्यदेव ने की है।

एवं श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी चैत्यभक्ति व प्रतिक्रमण दण्डकसूत्रों की संस्कृत टीका की है।

---

1. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65। 2. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पुस्तक–1 पृ. 64-65। 3. षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित, पुस्तक 1, पृ. 66। 4. वर्तमान में वीर निर्वाण संवत् 2540 है, इससे तीस वर्ष पूर्व श्री महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरी थी।

श्री गौतम स्वामी द्वारा प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ के प्रमाण

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी से)

श्रीगौतम स्वामी विरचित **प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी** ग्रंथ में श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने संस्कृत टीका में अनेक स्थानों पर श्री गौतमस्वामी का नाम लिया है उनके प्रमाण इस ग्रंथ में देखिए। यह ग्रंथ वीरसंवत् २४७३ (सन् १९४७) में श्री १०८ चारित्रचक्रवर्ति–आचार्य–शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था से प्रकाशित है।

(१)

श्री प्रभाचन्द्राचार्यविरचितटीकयाऽलङ्कृता

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम्।।१।।

श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मङ्गलार्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्करोति–

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

टीका–नमो नमस्कारोऽस्तु। कस्मै ? वर्धमानाय अन्तिमतीर्थकरदेवाय (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १)

(२)

तथा **वर्धमानं** च नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितः। कया ? भक्त्या गुणानुरागविशेषेण। भक्त्येत्येतदन्त्यदीपकम्। ईडे, स्तौमि, इत इत्येतेषां प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयम्।

ये रात्रौ दिवसे पथि प्रयततां दोषा यतीनां कुतोऽ–
प्यायाताः प्रलये तु हेतुरमलस्तेषामयं दर्शितः।।
श्रीमद्गौतमनामभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्योतकैः।
सुव्यक्तः सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्ज्ञातः प्रभाचन्द्रतः।।

।।इति–श्रीगौतमस्वामी–विरचित–दैवसिकादि–प्रतिक्रमणायाष्टीका श्रीमत्प्रभाचन्द्र–पण्डितेन कृतेति मंगलमहा।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शान्तिसागर–दिगंबरजैन–जिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीताया: प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः प्रथमो ग्रंथः समाप्तः।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८७–८८)

(३)

बृहत्प्रतिक्रमणम्

दोषा दैवसिकप्रतिक्रमणतो नश्यन्ति ये नो नृणां
तन्नाशार्थमिमां ब्रवीति गणभृच्छ्रीगौतमो निर्मलाम्।
सूक्ष्मस्थूलसमस्तदोषहननीं सर्वात्मशुद्धिप्रदां
यस्मान्नास्ति बृहत्प्रतिक्रमणतस्तन्नाशहेतुः परः।।१।।

श्री गौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्कुर्वन्नाह **णमो जिणाणं**इत्यादि। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८९)

(४)

सुधम्मे इत्यादि। **श्रीगौतमस्वामी**–इष्टोपयोगसंबोधनेन भव्यान्संबोधयन् **सुधम्मे** इत्याद्याह।। **आउस्संतो।।** आयुष्मन्तो भव्या **मे** मया सुदं श्रुतम्। इह भरतक्षेत्रे खलु स्फुटं **भयवदा** भगवताऽहिंसादीनि व्रतानि **सम्मं धम्मोति** सम्यग्धर्म इति– **उवदेसिदाणि** उपदिष्टानि। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ९७)

(५)

कायं व्युत्सृजामि त्यजामि तत्रोदासीनो भवामि। कथं भूतं कायं ? **पावकम्मं**।। पापकर्म यस्मात् पापाय वा कर्म व्यापारो यस्य।। **दुच्चरियं**।। दुष्टं दुर्गतिप्रापकं चरितं यस्य।

यत्पापं प्रचुरं प्रदुष्टमनसा जीवैः पुरोपार्जितं।
तत्सद्यः प्रलयं प्रयाति निखिलं तेषां प्रतिक्रामतां।।
मत्वेदं गणभृत्प्रतिक्रमणया तन्नाशमासूक्तवान्।
व्याख्याता तदियं प्रभेंदुमुनिना सद्धीधनैर्भाव्यतां।।

।।इति–श्रीगौतमस्वामि–विरचित–बृहत्प्रतिक्रमणायाष्टीका श्रीमत्प्रभाचंद्र–पंडितेन कृतेति।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्य–शान्तिसागर–दिगंबरजैनजिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः द्वितीयो ग्रंथः समाप्तः।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १५२)

(६)

आलोचना

पंचाचारविशोधनार्थममलामालोचनामुक्त्वा–
नष्टम्यादिदिनावधिर्गणनया श्रीगौतमो मादृशं।
स्पष्टार्थैः प्रवरैः प्रसन्नवचनैः सर्वप्रबोधप्रदै–
स्तां व्याख्यातुमशेष–तोऽमलवपुः प्रारभ्यते प्रक्रमः।।१।।

श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य पंचाचारगोचरस्यातीचारस्य दिनगणनया विशुद्ध्यर्थमालोचनालक्षणमुपायमुपदर्शयन्नाह**इच्छामी**त्यादि।। **भंते**।। भगवन् इच्छामि।। किं कर्तुं ? **आलोचेदुं**।। आलोचयितुं।। आलोचनां विशुद्धिं कर्तुं। क्व ? **अट्ठमियम्हि**।। आष्टमिके। अष्टम्यामष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनायां भवो ज्ञानाचाराद्यतीचार आष्टमिकः। तस्मिन्।। **अट्ठमियमालोचेदु**मिति।। पाठे त्वष्टसंख्यावच्छिन्नदिनगणनाप्रभवं तदतीचारमालोचयितुमिच्छामीत्यर्थः।

(प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १५३)

(७)

सम्मत्तमरणं।। सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं।। **होउ मज्झं**।। भवतु मम।। **पंडितमरणं**।। भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरण–भेदात् त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं**।। वीर्ययुक्तस्याक्लीबस्य मरणं मम भवतु। **दुक्खक्खओ**।। दुःखाना चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ**।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो**।। बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं**।। शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति**।। जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं।
व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।
तद्येन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।
स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

पेटलापट्के श्रीचंद्रप्रभदेवपादानामग्रे **श्रीगौतमस्वामीकृत**–प्रतिक्रमणात्रयस्य टीकात्रयं–श्री प्रभाचंद्रपंडितेन कृतमिति।।१।।

।।श्री।।श्री।।श्री।। ।।श्रीपार्श्वनाथाय नमः।।

इतिश्री–अष्टोत्तरशतगुणगणालंकृतचारित्रचक्रवर्त्याचार्यशान्तिसागरदिगंबर–जैनजिनवाणीजीर्णोद्धारकसंस्थया प्राकाश्यं नीतायाः प्रतिक्रमणग्रंथत्रय्याः तृतीयो ग्रंथः समाप्त।। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १९४, १९५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१)	(२)	(३)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ७०)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. ८९)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९०)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. २००)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं... (पृ. २२४)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २२४)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् (पृ. २११)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २३०)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २३०)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (पृ. ११९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४१)	कीरतं वि ण समणुमणामि (पृ. १४२)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। (पृ. २४६)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८)	कीरंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २९८)
(६) श्रमणचर्या–प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	कुर्वेऽहं (पृ. ९१, ९३)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १०)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)
(७) श्रमणचर्या–द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	कुर्वेऽहम् (पृ. ९५)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि..... (पृ. ९७)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ९७)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	कुर्वेऽहं (पृ. ३४७)	**चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं** (पृ. ३७४)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ३४८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	कुर्वेऽहं (पृ. ११४)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. १४५)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. ११६)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	कुर्वेऽहं (पृ. २६२) करोम्यहं (पृ. २६७)	चरित्ताणं तवाणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. २६८)	अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि (पृ. २५०)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	करोम्यहम् (पृ. ७९)	चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं (पृ. ८०)	कीरंतं पि, ण समणुमणामि (पृ. ८०)

नोट–पाठकगण ध्यान दें–जिन पुस्तकों में श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में जो परिवर्तित, परिवर्धित पाठ हैं चार्ट में उनके नीचे अंडरलाईन हैं, जो अनुचित है अतः आप परिवर्तित एवं परिवर्धित पाठ न पढ़े। शुद्ध, प्राचीन पाठ ही पढ़ें।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(४)	(५)	(६)	(७)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. ९०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७४)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. ७८, ११९)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. ८१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २२५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २०३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि। (पृ. २६५)	पोथवं वा कमंडलुं वा (पृ. २१२)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. २३१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २१३)	झाणं विउस्सग्गो चेदि	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २२१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १४२)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. १७८)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. १३१)
वंदामि रिट्ठणेमिं (पृ. १०)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २८२)	झाणं विउस्सग्गो चेदि (पृ. ४३२)	पोथयं वा कमंडलुं वा (पृ. २७४)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ११)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ९१)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा कमण्डलुं वा (पृ. १३१)
वंदे अरिट्ठणेमिं (पृ. ९८)	अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि (पृ. १०२)	विउस्सग्गो झाणं चेदि (पृ. १७५, १९६)	पोत्थयं वा पीढं वा कमंडलुं वा (पृ. १११, २००)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ३७५)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ३५६)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३५८)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. ३६३)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. १४६)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. १२४)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. २११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वां (पृ. १३१)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. २६९)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. २४८)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. ३११)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा (पृ. २६०)
वंदाम्यरिट्ठणेमिं (पृ. ८१)	अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि (पृ. ७२)	झाणं, विउस्सग्गो चेदि (पृ. १२०)	पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा (पृ. ६९)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(८)	(९)	(१०)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. ८२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ८६)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. ८९)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. २१४)	लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टा-विंशति-मूलगुणाः (पृ. २१९)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.. (पृ. २२३)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु...(पृ. २२२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २२९)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां.... (पृ. २२९)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु... (पृ. १३२)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः... (पृ. १३७)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. १४१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु..... (पृ. २७८)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. २८८)	पाक्षिकप्रतिक्रमणायां (पृ. २९६)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६,) (सन् १९८०)	दोसु अट्ठ-रुद्द संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ.. (पृ. १३३)	लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १४३)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १४४)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	दोसु अट्ठरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ११२, २०१)	रोधषडावश्यकक्रियालोचादयोऽष्टा-विंशतिमूलगुणाः (पृ. १२०)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. १२१)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. ३६४)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. ३६९)	पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. ३७३)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ..... (पृ. १३३)	रोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशति-मूलगुणाः (पृ. १३९)	पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां (पृ. १४४)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	दोसु अट्ठ-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ (पृ. २६१)	रोध-षडावश्यकक्रियालोचादयो-ऽष्टाविंशतिमूलगुणाः.... (पृ. २६७)	**पाक्षिकप्रतिक्रमण-क्रियायां** (पृ. २६७)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	दोसु अट्ठरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ... (पृ. ७१)	रोध-षडावश्यक-क्रिया-लोचादयोऽष्टा-विंशति मूलगुणाः (पृ. ७५)	पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां (पृ. ५५)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(११)	(१२)	(१३)	(१४)
राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ९३)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ९४)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ९५)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९८)
राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २२८)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३०)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभो–यणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३१)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २३६)
राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. २३४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. २३५)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. २३६)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. २४०)
राइभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि (पृ. १४४)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. १४६)	राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १४७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १५१)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ३०६)	अणादरेण वा केण वि कारणेण (पृ. ३१०)	राईभोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण मेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. ३१४)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३३४)
राईभोयण–वेरमणछट्ठाणि, स–भाववाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोय–णमेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि, अणुव्वदाणि सभावणाणि (पृ. १२६)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. १२८)	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि, एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १२८) पृ. १३३, १३७, १४२, १४७, १५१ पर भी यही बढ़ाया हुआ पाठ है।	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. १३६)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि, स–भावणाणि (पृ. ३७९)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. ३८१)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयण–मेगभत्तं पच्चुप्पणं–फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. ३८२)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ३९०)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि स–भावणाणि (पृ. १५०)	अणादरेण वा, केण वि कारणेण (पृ. १५२)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवाभोयणमेगभत्तं–पच्चुप्पणं–फासुगं अब्भुट्ठेमि (पृ. १५३)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. १६२)
राइभोयण–वेरमण–छट्ठाणि अणुव्वदाणि (पृ. २७१)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. २७३)	राइ–भोयणं वोस्सरामि, दिवा–भोयणं–अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि ऐगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं–अब्भुट्ठेमि (पृ. २७३)	वियडिं वा मट्टियं वा (पृ. २७९)
राइभोयणवेरमण–छट्ठाणि सभावणाणि (पृ. ८४)	अणादरेण वा, अणेण केण वि कारणेण (पृ. ८६)	राइभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयण–मेयभत्तं अब्भुट्ठेमि अणेयभत्तं वोस्सरामि एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमिं (पृ. ८७)	वियडिं वा मणिं वा (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(१५)	(१६)	(१७)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. ९८)	मणुणामणुणेसु (पृ. ९९)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १०७)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. २३६)	मणुणामणुणेसु (पृ. २३८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २४९)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	दंतंतर सोहणमित्तं पि (पृ. २४०)	मणुणामणुणेसु (पृ. २४२)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. २५१)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	दंतंतरसोहणमित्तं पि (पृ. १५१)	मणुणामणुणेसु (पृ. १५३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. १६१)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	दंतंतर-सोहणमित्तं पि (पृ. ३३४)	मणुणामणुणेसु (पृ. ३४६)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि (पृ. ३९४)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	दंतंतर-सोहणं णिमित्तं, वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं चेदि। इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. १३६)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १४०)	पच्छिमसल्लेहणामरणं चेदि, इच्छेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १५९)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	दंतंतर-सोहणणिमित्तं, वि (पृ. ३९०)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ३९५)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. ४१७)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	दंतंतर-सोहणं-णिमित्तं वि (पृ. १६२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. १६८)	पच्छिमसल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. १९२)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	दंतंतर-सोहणणिमित्तं, वि (पृ. २७९)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. २८३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं, इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि (पृ. २९९)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	दंतंतरसोहणणिमित्तं वि (पृ. ९२)	मणुण्णामणुण्णेसु (पृ. ९३)	पच्छिम-सल्लेहणामरणं से ..... (पृ. १०४)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(१८)	(१९)	(२०)	(२१)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १०७)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १११)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं (पृ. १११)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. २४९)	अट्ठदहभवणवासिय (पृ. २५०)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १९४)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. १९४)
आसवसंवर-णिज्जरबंधमोक्खमहि-कुसले... (पृ. २५१)	अट्ठदहभवणवासिय..... (पृ. २५२)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १८८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १८८)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. १६४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १६४)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १६८)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. १६८)
आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले (पृ. ३९६)	अट्ठदहभवणवासिय... (पृ. ३९८)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. ५०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालो-चेउं (पृ. ५०)
आसंव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. १९२)	दह-अट्ठ-पंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति.... (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चारमालोचेउं (पृ. ४०)
आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १५९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय... (पृ. १६०)	देवा वि तं णमस्संति (पृ. १६४)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गोकओ तस्सालोचेउं (पृ. १६५)
आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. ४१७)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. ४१८)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ३०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचउं. (पृ. ३०)
आसवबंध-संवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले (पृ. १९२)	दहअट्ठपंचभवणवासिय.... (पृ. १९३)	देवा वि तं णमंसंति (पृ. ४०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं..... (पृ. ४०)
आसवबंध-संवरणिज्जर-मोक्खमहि-कुसले (पृ. २९९)	दहअट्ठपंचभवणवासिय..... (पृ. २९९)	देवा वि तं णमंस्संति (पृ. २८)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो, सम्मणाण.... (पृ. २९)
आसवबंधसंवरणिज्जर-मोक्खमहि कुसले (पृ. १०४)	अट्ठदहभवणवासिय.... (पृ. १०५)	देवा वि तस्स पणमंति (पृ. १०८)	इच्छामि भते! पडिक्कमणइचारमालोचेउं सम्मणाण..... (पृ. १०८)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

क्र. सं.	(२२)	(२३)	(२४)
(१) क्रियाकलाप (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४६२) (सन् १९३६)	इच्छामि भंते! वीरभत्ति-काउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ.... (पृ. ६४)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. ८९)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय)... (पृ. ९७)
(२) धर्मध्यान दीपक (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८३) (सन् १९५७)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ..... (पृ. १९१)		पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय (पृ. २३५)
(३) नित्यभक्ति पाठ (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)	चत्तारिमंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं (पृ. २२९)	पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय.... (पृ. २३८)
(४) यतिक्रियामंजरी (प्रकाशन-वी. नि. सं. २४८८) (सन् १९६२)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. १८६)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं.... (पृ. १४१)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १५०)
(५) मुनिचर्या (प्रकाशन-वी. नि. सं. २५२१) (सन् १९९५)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४६)	चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं..... (पृ. २९८)	पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३३२)
(६) श्रमणचर्या-प्रथम संस्करण (प्र.-वी. नि. सं. २५०६) (सन् १९८०)	इच्छामि भंते! वीरभक्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ....) (पृ. ३५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं..... (पृ. ५६)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(७) श्रमणचर्या-द्वितीय संस्करण (प्रकाशन-वी. सं. २५१६) (सन् १९९०)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं, जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो.... (पृ. ३१)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं... (पृ. ५७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १३५)
(८) विमलभक्ति संग्रह (प्रकाशन-वी. सं. २५१५-१६) (सन् १९८९-९०)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राईओ (देवसिओ) (पृ. २५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ३४७)	पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ३८८)
(९) श्रमणाचार (प्रकाशन-वी. सं. २५१५) (सन् १९८९)	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे राइओ (देवसिओ) (पृ. ३५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं.... (पृ. ११५)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. १६१)
(१०) सुज्ञान श्रमणचर्या (प्रकाशन-वी. सं. २५३८) (सन् २०१२)	इच्छामि भंते! पडिक्कमणादि-चार-मालोचेउं जो मे (देवसिओ) राईओ (पृ. २५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. २६७)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. २७८)
(११) दिनचर्या (संकलनकर्ता-ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष')	इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) (पृ. ४५)	चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं (पृ. ७९)	पण्णत्तो जो मए पक्खिय (चउमासिय) (पृ. ९१)

श्री गौतमस्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन अनुचित है।

(२५)	(२६)	(२७)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंत्ते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि– मरणं पंडियमरणं..(पृ. ८८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १०४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १०४)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. २२२)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४४)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहि– मरणं पंडियमरणं... (पृ. २२८)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. २४७)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. २४८)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं.... (पृ. १४०)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. १५९)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १५९)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्त–मरणं समाहिमरणं पंडियमरण.... (पृ. २९४)	बज्झंब्भंतरेषु य (पृ. ३८२)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ३८४)
आभोगो अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो अणाभोगो जादो, तं पडिक्कमामि। तस्स मए पडिक्कंतं मे सम्मत्तमरणं (पृ. १२०)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. १५५)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. १५५)
आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मतमरणं (पृ. ३७२)	बज्झमब्भंतरेषु य (पृ. ४११)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. ४१२)
आभोगो, अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. १४३)	बज्झमब्भंतरेसु य (पृ. १८५)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १८६)
आभोगो, अणाभोगो, जादो पडिक्क– मामि तस्समए पडिक्कंतं मे सम्मत्त– मरणं (पृ. २६६)	बाहिरमब्भंतरेसु य (पृ. २९४)	पाणादिवादं जहि मोसगं च (पृ. २९५)
आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं (पृ. ७८)	बज्झमब्भंतरेसु य। (पृ. १००)	पाणादिवादं चहि मोसगं च (पृ. १००)

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

वर्तमान में भगवान महावीर स्वामी की वाणी को, श्री गौतम गणधर स्वामी के वचनामृत को, श्री वीरसेन स्वामी, श्री कुन्दकुन्द स्वामी आदि पूर्वाचार्यों की वाणी को हृदयंगम करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख चारित्रचन्द्रिका, युगप्रवर्तिका, दिव्यशक्ति, आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी हैं। जिनका एक–एक शब्द जिनवाणी है, जिनकी लेखनी का एक–एक शब्द आगम से निकला शब्द है। आगम से हटकर वे न तो कुछ कहती हैं और न लिखती हैं।

यह 'जिनागम रहस्य' बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ को लिखने का पूज्य माताजी का अभिप्राय यह है कि हमें पूर्वाचार्यों की वाणी में, उनके ग्रंथों में कोई भी परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन का अधिकार नहीं है। इस बात को विद्वज्जन समझे और इस विषय में बारीकी से चिन्तन करें। श्रीगौतम गणधर स्वामी ने भगवान महावीर के समवसरण में दीक्षा ली, भगवान महावीर के प्रथम गणधर हुए, भगवान महावीर के समीप ३० वर्ष तक रहे, जिन्होंने अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग की रचना की, जिन्हें मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान था, जिनके मुख से निकली हुई चैत्यभक्ति का पाठ प्रतिदिन सभी साधु, व्रती श्रावकगण आदि करते हैं, उस चैत्यभक्ति में तीनलोक के समस्त अकृत्रिम–कृत्रिम जिनमंदिरों की, नवदेवताओं अर्थात् अर्हंत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय की वन्दना हो जाती है। इसके अतिरिक्त श्रीगौतमस्वामी प्रणीत श्रावक– प्रतिक्रमण, दैवसिक–प्रतिक्रमण एवं पाक्षिक–प्रतिक्रमण पाठ है, जिनका सभी साधु–संघों में प्रतिदिन पाठ होता है। इनकी कृतियों में आज परिवर्तन किया गया है जो कि अनुचित कार्य है।

इस ग्रंथ में पूज्य माताजी ने ३४ विषय लिए हैं, जिसमें कि पाठ भेद हैं। जिन–जिन ग्रंथों में जैसा–जैसा पाठ है, उसको वैसा लिखकर पूज्य माताजी ने यह बताया है कि जिस ग्रंथ में जो पाठ है हमें वही रखना है। एक आचार्य की कृति में हमें दूसरे आचार्य की कृति से परिवर्तन नहीं करना है। इसके लिए पूज्य माताजी ने इस ग्रंथ में ५१ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के प्रमाण दिए हैं, जिससे यह एक प्रमाणीक ग्रंथ बन गया है।

१. णमोकार महामंत्र—यह मंत्र अनादिसिद्ध मंत्र है। पूज्य माताजी ने सर्वप्रथम णमोकार मंत्र के अक्षर–पद–मात्रा आदि का वर्णन करते हुए विभिन्न ग्रंथों से णमोकार मंत्र में पाठ भेद को दिखलाया है। णमोकार मंत्र में कहीं पर '**अरिहंताण**' और '**आइरियाणं**' पाठ है, कहीं पर '**अरहंताणं**' और '**आयरियाणं**' पाठ है। ये पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित दोनों पाठ हमारे लिए प्रमाणीक हैं।

२. चत्तारि मंगल पाठ—ये भी अनादि सिद्धमंत्र है, जैसा कि प्रतिष्ठासारोद्धार एवं प्रतिष्ठासार संग्रह में लिखा है–'**अनादिसिद्ध मंत्रः**' चत्तारि मंगल का प्राचीन पाठ सभी ग्रंथों में बिना विभक्ति का है, परन्तु वर्तमान में विभक्ति लगाकर चत्तारि मंगल पाठ–नया पाठ पढ़ा जा रहा है जो कि विचारणीय विषय है। अनेक ग्रंथों से प्राचीन पाठ के प्रमाण इसमें दिए गए हैं। अतः सभी को पुराना पाठ ही पढ़ना चाहिए। नया संशोधित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

३. गाथाएँ या सूत्र अपरिवर्तनीय है—इसमें लिखा है कि श्रीगौतम गणधर आदि महान आचार्यों के मुख से निकले जो गाथा सूत्र हैं उनमें विभक्ति लगाकर संशोधन नहीं करना चाहिए। वर्तमान में जो पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि में परिवर्तित पाठ हैं उन्हें नहीं पढ़ना चाहिए, प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए।

४. गाथाओं में पाठ भेद—समयसार ग्रंथ में कहीं–कहीं गाथा में पाठ भेद—अंतर होने से टीकाकार आचार्यों ने दोनों पाठ रखकर दोनों के अर्थ कर दिए हैं। किसी एक पाठ को प्रमाण और दूसरे को अप्रमाण नहीं माना है।

५. पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथ प्रमाण हैं—आगम में जहाँ दो मत आये हैं वहाँ टीकाकारों ने दोनों को प्रमाण मानने को कहा है, किन्तु धवला टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने एक स्थान पर स्वयं लिखा है–'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो' अर्थात् गौतम स्वामी से पूछना चाहिए; क्योंकि वे मनःपर्ययज्ञानी, सप्तऋद्धियों से समन्वित, भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर थे। अन्तर्मुहूर्त में जिन्होंने द्वादशांग की रचना की थी। इसे पढ़कर भव्य जीवों को पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा रखते हुए अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ रखना चाहिए।

६. श्री गणधरवलय मंत्र—श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत गणधरवलय मंत्र पाक्षिक प्रतिक्रमण में ४८ हैं, प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में श्री प्रभाचन्द्राचार्य कृत टीका में ४७ हैं और षट्खण्डागम ग्रंथ की नवमीं पुस्तक में ४४ मंत्र हैं। अन्य चार आचार्यों द्वारा रचित गणधरवलय विधान में ४८ मंत्र हैं। इसमें बताया है कि हमें और आपको किसी ग्रंथ में मंत्र बढ़ाना, घटाना नहीं है बल्कि सभी को प्रमाण मानना है।

७. नव पदार्थ—श्री गौतमस्वामी कृत पाक्षिक प्रतिक्रमण, श्री कुन्दकुन्दस्वामीकृत समयसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, भावसंग्रह में नवपदार्थ का क्रम एक है और श्री उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र एवं टीका ग्रंथों में, श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत द्रव्यसंग्रह में बदला है। हमारे लिए दोनों प्रमाणीक हैं।

८. बारह तप—इसमें भी श्रीगौतमस्वामी कृत प्रतिक्रमण पाठ में एवं षट्खण्डागम पुस्तक १३ में–बारह तप का क्रम एक है, लेकिन श्री कुंदकुंददेव कृत मूलाचार में एवं श्री उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र में बदला है। हमें जिसमें जैसा पाठ है उसे वैसा ही पढ़ना है।

९. बंध प्रत्यय–बंध के ४ कारण माने हैं। श्री गौतमस्वामी, श्री पुष्पदंत–भूतबली आचार्य एवं श्री कुंदकुंददेव कथित ग्रंथों में बंध के ४ कारण व उनके ५७ भेद माने हैं। आगे श्री उमास्वामी आचार्य व श्री नेमिचन्द्राचार्य आदि आचार्यों के बंध प्रत्यय–प्रमाद सहित पाँच भेदों को व उनके प्रभेदों को टीका ग्रंथों से जानना चाहिए। हमारे व आपके लिए ये सभी आचार्य देव प्रमाणीक हैं।

१०. धर्मध्यान—धर्मध्यान के भेद में भी अन्तर है। श्री गौतमस्वामी कृत प्रतिक्रमण पाठ में व प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी टीका एवं चारित्रसार में धर्मध्यान के १० भेद हैं। मूलाचार, ज्ञानार्णव एवं तत्त्वार्थसूत्र में ४ भेद माने हैं। हमें दोनों को ही प्रमाण मानना है।

११. ज्ञान–दर्शन के नामों में अन्तर—षट्खण्डागम पुस्तक १ में ज्ञान के २ भेद माने हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष। नियमसार में स्वभाव–विभाव ये दो भेद माने हैं। तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह में प्रत्यक्ष–परोक्ष–२ भेद माने हैं। श्री माणिक्यनंदि विरचित 'परीक्षामुख' ग्रंथ में मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष माना है।

१२. पच्चीस भावना—श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में एवं श्री उमास्वामी रचित तत्त्वार्थसूत्र

में पच्चीस भावनाओं के नाम में अचौर्यव्रत व अपरिग्रह व्रत की भावनाओं में अन्तर है, जिसे इसमें बताया है।

१३. सोलहकारण भावना—षट्खण्डागम ग्रंथराज एवं तत्त्वार्थसूत्र में कथित सोलह कारण भावनाओं में अन्तर है। जिसे इस ग्रंथ में चार्ट के माध्यम से दिखाया है।

१४. द्वादशानुप्रेक्षा—श्री कुंदकुंददेव कृत मूलाचार, द्वादशानुप्रेक्षा में, श्री शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव में एवं श्री उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र में १२ भावनाओं के क्रम में अन्तर है। इसे भी चार्ट के माध्यम से इस ग्रंथ में दर्शाया है।

१५. दशलक्षण धर्म में सत्यधर्म और शौचधर्म–प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी, मूलाचार प्रदीप, तत्त्वार्थवृत्ति, पद्मनन्दि– पञ्चविंशतिका ग्रंथ में सत्य धर्म को पहले लिया है। सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में शौचधर्म को पहले लिया है। इसमें पूज्य माताजी का कहना है कि तत्त्वार्थसूत्र के वाचन में या कहीं पर भी प्रवचन में सत्यधर्म को पहले होने में हठवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि दोनों ही पक्ष आगम में मान्य हैं।

१६. चौंतीस अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य–तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में, आदिपुराण में, नंदीश्वर भक्ति में ३४ अतिशय एवं ८ प्रातिहार्य के नामों में अन्तर है जिसे इस ग्रंथ में पूज्य माताजी ने बताया है। हमें इन सभी ग्रंथों को प्रमाणीक मानना है।

१७. आचार्यों के ३६ गुण–मूलाचार में श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने आचार्यों के विशेष गुण माने हैं। भगवती आराधना में ४ प्रकार से आचार्यों के ३६ गुणों को बताया है। पं. आशाधर जी ने अनगारधर्मामृत में अलग प्रकार से ३६ गुणों का वर्णन किया है। इन सभी का विशेष वर्णन आपको इस ग्रंथ में पढ़ने को प्राप्त होगा।

१८. साधु के २८ मूलगुण–मूलाचार आदि ग्रंथों में साधु के जिन २८ मूलगुणों का वर्णन है, उनसे भिन्न नाम जिन– सहस्त्रनाम स्तवन (पं. आशाधर विरचित) की प्रस्तावना में आया है जिसे इसमें दिया है।

१९. श्रावक के १२ व्रत–श्री गौतमस्वामी व श्री कुंदकुद देव के अनुसार १२ व्रत एक सदृश हैं। पंच अणुव्रत सभी में एक समान है। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों में अन्तर हैं। पाक्षिक प्रतिक्रमण, चारित्र पाहुड़ में तीन गुणव्रत एक समान है। रत्नकरण्डश्रावकाचार, वसुनन्दिश्रावकाचार आदि २५–३० श्रावकाचारों में अन्तर हैं। चार शिक्षाव्रत पाक्षिक प्रतिक्रमण, चारित्रपाहुड़ एवं भावसंग्रह में समान है और अन्य सभी श्रावकाचारों में भिन्न–भिन्न हैं।

चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना को पाक्षिक प्रतिक्रमण एवं अष्टपाहुड़ में लिया है इसके अतिरिक्त वसुनन्दि–श्रावकाचार आदि १० श्रावकाचारों में भी सल्लेखना को शिक्षाव्रत में लिया है। इन सभी के प्रमाण इस ग्रंथ में चार्ट के माध्यम से भी दिखाए है।

२०. श्रावक के ४ धर्म—कषायपाहुड़, रयणसार ग्रंथ में श्रावक के ४ धर्म–कर्तव्य माने हैं। उमास्वामी श्रावकाचार में श्रावकों की षट्क्रियायें मानी हैं। पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका एवं अन्यत्र ग्रंथों में भी श्रावकों के षट् आवश्यक कर्म बताए हैं।

२१. गृहस्थ के ६ आर्यकर्म—आदिपुराण ग्रंथ में श्रावकों के ६ आर्यकर्म–इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया है।

२२. पूजा के प्रकार (भेद)—आदिपुराण ग्रंथ में पूजा ४ प्रकार की बताई है। जैनभारती ग्रंथ में पूजा के ५ भेदों का वर्णन है। शास्त्रसार समुच्चय ग्रंथ में पूजा के १० भेद बताए हैं। उमास्वामी श्रावकाचार में श्री उमास्वामी आचार्य ने लिखा है कि पूजा २१ प्रकार से भी की जाती है। इन सभी के प्रमाण आपको इस एक ग्रंथ में उपलब्ध हैं।

२३. सम्यग्दर्शन का लक्षण—समयसार, नियमसार, रयणसार, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थ– सिद्धयुपाय, वसुनन्दि श्रावकाचार आदि ग्रंथों में सम्यग्दर्शन का लक्षण भिन्न–भिन्न प्रकार से हैं जिन्हें सप्रमाण इस ग्रंथ में लिया है।

२४. श्रावक के ८ मूलगुण—पुरुषार्थसिद्धयुपाय, उमास्वामी श्रावकाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार में श्रावकों के अष्टमूलगुण भिन्न प्रकार से हैं। सागार धर्मामृत में पं. आशाधर जी ने अनेक प्रकार से श्रावकों के अष्टमूलगुणों का एवं अन्य आचार्यों के मत से भी मूलगुणों का वर्णन किया है जिनके प्रमाण इसमें लिए हैं। चार्ट के माध्यम से भी अष्टमूलगुणों के अन्तर को दर्शाया है।

२५. धर्म का लक्षण—श्री गौतमस्वामी ने चैत्यभक्ति एवं वीरभक्ति में धर्म का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। रत्नकरण्डश्रावकाचार, उमास्वामी श्रावकाचार, अष्टपाहुड़ एवं पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका में धर्म का लक्षण आचार्यों ने किया है जिनमें भिन्नता है, सप्रमाण आप इस ग्रंथ में देखें।

२६. वर्ष के ३६६ दिन—श्री गौतमस्वामी ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में ३६६ दिन–रात्रि माने हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी ३६६ दिन–रात माने हैं। लेकिन व्यवहार में ३६५ दिन–रात माने हैं।

२७. संख्या का मान आगम में २४ अंक प्रमाण है—गणितसार संग्रह ग्रंथ में २४ अंक प्रमाण माना है। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में संख्यात की संख्या को ९० शून्य अंक प्रमाण माना है। आदिपुराण में मनुओं की आयु अमम आदि की संख्या द्वारा बताई है। व्यवहार में संख्या इकाई–दहाई से लेकर महाशंख तक १९ अंक प्रमाण मानी है।

२८. सोलह स्वर्गों के इन्द्र—कल्पवासी देवों में १६ स्वर्गों के १२ इंद्र, १४ इंद्र और १६ इंद्र भी माने हैं। तिलोयपण्णत्ति में १२ इंद्र और १६ इंद्र दो प्रकार से माने हैं। इसी तिलोयपण्णत्ति में इंद्र जब नंदीश्वर की पूजा के लिए जाते हैं उस समय के प्रकरण में १४ इन्द्र माने हैं। त्रिलोकसार, लोकविभाग एवं सिद्धान्तसार ग्रंथ में १२ इंद्र माने हैं। इन सभी के प्रमाण इस ग्रंथ में उपलब्ध हैं।

२९. सोलह स्वर्गों के देवियों की आयु—मूलाचार ग्रंथ में देवियों की आयु में दो मत आने पर टीकाकार ने बहुत ही सुन्दर समाधान किया है यद्यपि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिए फिर भी दोनों को ग्रहण करने में संशय मिथ्यात्व नहीं होता, क्योंकि जो अर्हंत के द्वारा प्रणीत है वह सत्य है इसमें सन्देह का अभाव है। फिर भी छद्मस्थजनों को विवेक कराना अर्थात् कौन सा सत्य है यह समझाना शक्य नहीं है इसलिए मिथ्यात्व के भय से दोनों का ही ग्रहण करना उचित है।

३०. चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या—तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में २४ तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या १४५९ मानी है। हरिवंशपुराण में १४५३ एवं महापुराण (उत्तरपुराण) में १४५२ आई है। इन सभी के अन्तर को चार्ट के माध्यम से इस ग्रंथ में दर्शाया है।

३१. चौबीस तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियाँ—उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण से २४ तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियों को इसमें लिया है, जिनमें कई एक तिथियों में अन्तर है।

३२. सम्मेदशिखर टोंक से मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या—श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य, (श्री यतिवर देवदत्त विरचित) श्री सम्मेदशिखर वन्दना एवं श्री सम्मेदशिखर कूट पूजन में मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या में अन्तर हैं जिन्हें चार्ट के द्वारा दिखाया है।

३३. चौबीस तीर्थंकर के माता–पिता के नाम—तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण, महाशान्तिधारा एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में २४ तीर्थंकरों के माता–पिता के नाम में अन्तर आया है।

३४. चौबीस तीर्थंकरों के यक्ष–यक्षी के नाम—तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ, प्रतिष्ठातिलक, महाशान्तिधारा एवं वास्तुसार में यक्ष–यक्षी के नामों में अन्तर है। प्रतिष्ठातिलक में यक्षी के श्लोक एवं मंत्र में लिखे नामों में भी अन्तर है जिसे इस ग्रंथ में चार्ट द्वारा दिखाया है।

अंत में इस ग्रंथ की संकलनकर्त्री–सरस्वती की प्रतिकृति, वागेश्वरी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, वाग्देवी, अवध–विश्वविद्यालय फैजाबाद एवं महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद से दो बार डी. लिट् की पदवी से अलंकृत, जैन जगत की अनमोल धरोहर परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने संस्कृत में इस ग्रंथ की प्रशस्ति लिखते हुए यह भावना की है कि यह ग्रंथ 'जिनागम रहस्य' सभी भव्य जीवों के लिए मंगलकारी हो। इसे पढ़कर सभी भव्यजीव अपना सम्यग्दर्शन शुद्ध, निर्मल एवं दृढ़ बनावें और जब तक जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक की रचना इस भू पर रहे तब तक यह ग्रंथ लोगों को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता रहे।

कलियुग की ब्राह्मी माता, भगवान महावीर के शासन की प्रथम लेखिका साध्वी पूज्य माताजी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की प्रार्थना करते हुए मैं पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि–कोटि वंदन करती हूँ।

दो शब्द

–आर्यिका सुव्रतमती

सिद्धेः कारणमुत्तमा जिनवरा आर्हन्त्यलक्ष्मीवराः।
मुख्या ये रसदिग्युता गुणभृतस्त्रैलोक्यपूजामिताः।।
चित्ताब्जं प्रविकासयंतु मम भो ! ज्योतिः प्रभा भास्कराः।
तीर्थेशा वृषभादिवीरचरमाः कुर्वंतु मे (नो) मंगलम्।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी युग–प्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना करते हुए अब तक लगभग ३५० ग्रन्थों का लेखन शुद्ध, प्रासुक लेखनी से आगमानुसार किया है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि मैं किस तरह से वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से सिंचित करूँ। इसके लिए पूज्य माताजी ने पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्रों के आधार से जैनभारती, ज्ञानामृत, आगम दर्पण, जिनागम में नव पदार्थ, द्वादशानुप्रेक्षा आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जिनागम रहस्य' में पूज्य गणिनी माताजी ने अनेक विषयों पर, जिसमें आचार्यों की कृतियों में पाठ भेद हैं उन्हें लिया है और यह लिखा है कि हमें पूर्वाचार्यों की किसी भी कृति में परिवर्तन, परिवर्धन करने का अधिकार नहीं है और न ही करना चाहिए।

आज हम सभी का परम सौभाग्य है जो कि भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि को झेलने वाले श्री गौतम गणधर स्वामी की वाणीरूप चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति आदि पाठ हैं जिनका साधु, व्रती श्रावक आदि प्रतिदिन पाठ करते हैं।

वर्तमान में आगम की बात को बताने वाली पूज्य माताजी ने बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज के ३ बार दर्शन किए, उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं के प्रथम पट्टशिष्य चारित्रचूड़ामणि आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त कर आर्यिका ज्ञानमती बनकर अपने ज्ञान का अलख पूरे विश्व में फैला दिया है।

षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की १६ पुस्तकों पर ''सिद्धान्तचिन्तामणि'' संस्कृत टीका का लेखन एक अभूतपूर्व कार्य है। 'यथानाम तथागुण' को धारण करने वाली, चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाली, ग्रंथों को अपने शिष्य–शिष्याओं को पढ़ा–पढ़ाकर पढ़ने वाली, राष्ट्रगौरव, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, युगनायिका, दिव्यशक्ति स्वरूपा गणिनी ज्ञानमती माताजी इस युग के लिए एक वरदान हैं, साक्षात् सरस्वती का अवतार हैं।

प्रज्ञाश्रमणी पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने एक भजन में लिखा है—

माता हो माता रे ज्ञान तेरा सांचा, सांची तेरी हर बात है। हो .....
द्वादशांग वाणी का आधार लेकर
कुंदकुंदवाणी में साकार होकर

जिनवाणी कहती हो, जिनवाणी रचती हो, निजवाणी का रस घोल के
हो .....माता .....।

वास्तव में देखा जाए तो पूज्य माताजी का एक–एक शब्द जिनवाणी है। जिनवाणी से हटकर माताजी कोई भी शब्द न ही बोलती हैं और न लिखती हैं। वर्तमान में लगभग १४०० पीछी धारी साधुओं में सबसे प्राचीन, ज्ञान और चारित्र में वयोवृद्ध पूज्य माताजी का चरण सानिध्य, दर्शन पाकर हम सभी धन्य हो गए हैं। पूज्य माताजी के गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है।

'जिनागम रहस्य' ग्रंथ की प्रूफरीडिंग और सेटिंग के माध्यम से जो जिनागम के रहस्य को समझने का सौभाग्य मिला है उसे मैं पूज्य माताजी की विशेष अनुकम्पा मानती हूँ और यही भावना करती हूँ कि आगे भी इसी तरह पूज्य माताजी के 'जिनागम नवनीत' जिनका पूज्य माताजी ने संकलन किया है, उसका भी शीघ्र प्रकाशन हो। और जिनागम में छिपे 'रत्नों के खजाने' का सभी को लाभ प्राप्त हो।

पूज्य माताजी के श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन करते हुए यही भावना करती हूँ कि इन ग्रंथों का स्वाध्याय मेरे जीवन में एक दिन श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को प्राप्त कराने में सहायक हो। पूज्य माताजी का चरण सानिध्य, छत्रछाया, वरदहस्त सदा प्राप्त होता रहे। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहे इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ—

माँ के चरणों की धूलि बनूँ, मैं यही कामना करती हूँ।
मिले सदा आशीष आपका, यही भावना रखती हूँ।।
है यही प्रार्थना जिनवर से, ये प्रभा सदा दिन दूनी हो।
भारत माता की गोदी, इन माँ से कभी न सूनी हो।।

हार्दिक उद्गार

–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।।

बीसवीं शताब्दी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनकी चर्या चतुर्थकालीन सम मुनियों के समान थी। इनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर, आर्यिका ज्ञानमती नाम पाकर, स्वनाम को सार्थक करते हुए परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके, ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करके, अपने ज्ञान को परिपक्व करके 'सहस्रनाम मंत्र' की रचना से अपनी लेखनी का शुभारम्भ करके अब तक छोटे–बड़े सभी ग्रंथों को मिलाकर ३५० ग्रंथों की रचना की है।

आज के वैज्ञानिक युग में पारस टी. वी. चैनल के माध्यम से लोग घर बैठे पूज्य माताजी के मुखारविन्द से प्रतिदिन ज्ञानामृत का पान करते हैं। जब वे हस्तिनापुर आकर पूज्य माताजी का दर्शन करते हैं, तो गद्गद् होकर कहते हैं कि माताजी हम तो आपके शुद्ध शास्त्रीय, आगमानुसार प्रवचन सुनकर धन्य हो गए।

वास्तव में पूज्य माताजी ने भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से निकली द्वादशांग वाणी को जिन्हें पूर्वाचार्यों ने ग्रंथरूप में लिपिबद्ध किया है उसी को आत्मसात करके, जन–जन के हिताय प्रवचन के द्वारा तथा ग्रंथों के द्वारा प्रदान कर रही हैं। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट न्याय के ग्रंथ का अनुवाद करके पूज्य माताजी ने एक महान् कार्य किया है। विद्वद्वर्ग, युवावर्ग, बालवर्ग सभी के लिए पूज्य माताजी ने समयसार, नियमसार की टीका, कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज आदि विधान, प्रतिज्ञा, परीक्षा, जीवनदान आदि उपन्यास एवं बालविकास के ४ भाग, जैसी पुस्तकें लिखकर सर्वांगीण ज्ञान का प्रचार प्रसार किया है।

मेरा परम सौभाग्य है कि पूज्य माताजी की कुल परम्परा में जन्म लेकर, उन्हें गुरुरूप में पाकर उनके ज्ञानामृत को प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य किया है। इस पुस्तक 'जिनागम रहस्य' के सार को समझकर आगम के प्रति दृढ़ रहूँ। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति भक्ति को करते हुए अपनी नारी पर्याय को सफल करूँ यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना करते हुए, ज्ञान की भण्डार पूज्य माताजी के चरणों में कोटि–कोटि नमन करती हूँ—

हे ज्ञानमती मात ! तुम्हें करती मैं नमन।
हे आर्यिका शिरोमणी ! गणिनी तुम्हें नमन।
देश में तुम ज्ञान की गंगा बहाती हो।
माता सरस्वती की प्रतिकृति कहाती हो।।

'जिनागम रहस्य' ग्रंथ में प्रयुक्त ग्रंथों के नाम

१. षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक–१
२. मूलाचार पूर्वार्ध
३. षट्खण्डागम पुस्तक–१ सिद्धान्तचिन्तामणि टीका
४. मंगलमंत्र णमोकार–एक अनुचिन्तन
५. क्रिया कलाप
६. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी
७. प्रतिष्ठातिलक
८. प्रतिष्ठासार संग्रह (हस्तलिखित)
९. प्रतिष्ठासारोद्धार
१०. ज्ञानार्णव
११. नियमसार प्राभृत
१२. नियमसार
१३. अमरकीर्ति विरचित नाममाला का भाष्य
१४. मूलाराधना (भगवती आराधना)
१५. सामायिक भाष्य
१६. गोम्मटसार जीवकाण्ड (जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका)
१७. तिलोयपण्णत्ति
१८. प्रवचनसार
१९. श्रमणचर्या
२०. प्रतिष्ठा पाठ
२१. मुनिचर्या
२२. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–९
२३. षट्खण्डागम पुस्तकानि–९, १०, ११, १२ सिद्धान्तचिन्तामणि टीका
२४. गणधरवलय पूजा
२५. श्री गणधरवलय पूजन संग्रह
२६. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–१३
२७. समयसार पूर्वार्ध
२८. षट्खण्डागम धवला पुस्तक–८
२९. सर्वार्थसिद्धि
३०. द्रव्यसंग्रह
३१. चारित्रसार
३२. तत्त्वार्थसूत्र
३३. यतिप्रतिक्रमण
३४. कुंदकुदभारती
३५. मूलाचार उत्तरार्ध
३६. मूलाचार प्रदीप
३७. तत्त्वार्थवृत्ति
३८. तत्त्वार्थवृत्ति (सुखबोध टीका)
३९. तत्त्वार्थराजवार्तिक
४०. आदिपुराण भाग–१
४१. नंदीश्वर भक्ति
४२. बाल विकास भाग–४
४३. इष्टछत्तीसी, बुधजन कविकृत
४४. अनगार धर्मामृत मूल (संस्कृत)
४५. अनगार धर्मामृत हिन्दी टीका
४६. दिगम्बर मुनि
४७. जिनसहस्रनाम (स्वोपज्ञ विवृति युत)
४८. चारित्र पाहुड़ (षट्प्राभृत में)
४९. रत्नकरण्डश्रावकाचार

५०. हरिवंशपुराण
५१. श्रावकाचार संग्रह भाग १ से भाग ५ तक
५२. कषाय पाहुड़ (जयधवला) पुस्तक–१
५३. रयणसार
५४. उमास्वामी श्रावकाचार
५५. आदिपुराण भाग–२
५६. पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका
५७. जैनभारती
५८. शास्त्रसार समुच्चय
५९. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
६०. सागार धर्मामृत
६१. अष्टपाहुड़ में दर्शन प्राभृत
६२. गणितसार संग्रह
६३. तिलोयपण्णत्ति भाग–२
६४. त्रिलोकसार
६५. लोक विभाग
६६. सिद्धान्तसार दीपक
६७. महापुराण (उत्तरपुराण)
६८. जिनस्तोत्र संग्रह
६९. जम्बूद्वीप पूजांजलि
७०. सम्मेदशिखर कूट पूजन
७१. सम्मेदशिखर माहात्म्य
७२. वास्तुसार
७३. प्रवचन निर्देशिका
७४. षट्खण्डागम धवला पु. ६
७५. षट्खण्डागम धवला पु. ७
७६. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
७७. परीक्षा मुख
७८. पंचास्तिकाय

राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

१. जन्म, वैराग्य और दीक्षा-२२ अक्टूबर सन् १९३४, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र १८ वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् १९५२ में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में २४ घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् १९५३ में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् १९५५ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् १९५६ में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके "**आर्यिका ज्ञानमती**" नाम प्राप्त किया।

२. अध्ययन और अध्यापन-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि

अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

३. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-भगवान महावीर के पश्चात् २६०० वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् १९५४ में सहस्त्रनाम के १००८ मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् १९६९-७० में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग २५० से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

४. सिद्धांत चक्रेश्वरी-पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा १००० वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

५. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन

भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् १९७८ में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग १०० विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

६. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-सन् १९८५ में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् १९९८ में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। ११ जून २००० को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

७. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा ५ फरवरी १९९५ को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत ८ अप्रैल २०१२ को पूज्य माताजी के ५७वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

८. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् १९५६-५७ में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री

शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् १९६७ में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

६२ वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

९. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् १९९३ से १९९५ तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्त्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान

कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में** कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, **पिड़ावा में** समवसरण रचना की प्रेरणा, **सोलापुर (महा.) में** भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, **श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में** मंदारवृक्ष की स्थापना, **अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में** पारिजातवृक्ष की स्थापना, **केकड़ी (राज.) में** सम्मेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की **जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)** के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि **'राजगृही' में** 'मुनिसुव्रतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में** जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली **गुणावां जी में** गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, **श्री सम्मेदशिखर जी में** भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की शृँखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में** 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा ९ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थंकरों की शाश्वत **जन्मभूमि अयोध्या में** वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस शृँखला में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक सम्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य टोकों पर भी मंदिरों के शिलान्यास होकर निर्माण हो चुके हैं।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-**माधोराजपुरा (राज.) में** भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मेदशिखर पर्वत का निर्माण करके १५ फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा २१ नवम्बर से २६ नवम्बर २०१० तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

इसी शृँखला में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी

विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना-

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् २००७ में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान २१२७ जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं ५६ फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् २०१० में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

१०. विश्व में अनोखी १०८ फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा-विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

११. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ-शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' का निर्माण हुआ है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव (मई २०१३ में) सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

१२. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा-भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृंभिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर भगवान की प्रतिमा विराजमान हो चुकी है तथा इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है।

१३. धर्मप्रभावना के विविध आयाम-जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् १९९८ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों

तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् २००३ में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् १९९७ में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् १९९७-१९९८ में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् २००० में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

१४. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

१५. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन-२३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में ६ जनवरी २००५ को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष २००६ को "सम्मेदशिखर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर २००७ में अहिच्छत्र में आयोजित 'सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

१६. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. २५३२ अर्थात् १५ अप्रैल २००६ को अपनी आर्यिका दीक्षा के ५० वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में १४ से १६ अप्रैल २००६ तक **'गणिनीप्रमुख**

श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव' का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

१७. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-२१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् २००९ ''शांति वर्ष'' में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

१८. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष २०१० को ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ११ जून २०१० को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ३१ मई २०११ तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

१९. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-२०११ के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

२०. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् १८ वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के ६० वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके ७९वें जन्मदिवस एवं ६१वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष २०१२-२०१३ मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

२१. मंगलमय अमृत महोत्सव-अब पूज्य माताजी के ८०वें जन्मदिवस को शरदपूर्णिमा-१८ अक्टूबर २०१३ को ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव'' के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया। इस अवसर पर ''सम्मेदशिखर विधान'' के ८० मांडले बनाकर ८० परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित हुआ। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार **शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में ''आचार्य शांतिसागर धाम''** नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् १९२७-२८ में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से ११० किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् १९७४ से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। २०० फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित १०१ फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)**। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से १९७२ में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की ३५ एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

१. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की २०७ प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

२. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

३. ध्यान मंदिर-२४ तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

४. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

५. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में १२वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

६. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

७. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित ॐ (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

८. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान २० तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

९. सहस्त्रकूट मंदिर-जिनेन्द्र भगवान की १००८ प्रतिमाओं सहित।

१०. भगवान ऋषभदेव मंदिर-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

११. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ-'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, ८ प्रतिमाओं से समन्वित ३१ फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

१२. तेरहद्वीप जिनालय-इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल २१२७ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

१३. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर-इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

१४. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

१५. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की ३१-३१ फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

१६. तीनलोक की भव्य रचना—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

१७. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग १५००० ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

१८. जम्बूद्वीप औषधालय

१९. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की १६ जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

२०. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—१९७२ में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में ३०० से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

२१. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् १९७४ से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

२२. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ ५०० लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

२३. धर्मशालाएँ—२०० से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

२४. मनोरंजन के साधन—तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर १९८१-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

३१ अक्टूबर १९८२-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल १९८५-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून १९८२ से अप्रैल १९८५-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा ४ जून, १९८२ को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए १०४५ दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

१९९२-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

१९९३-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर १९९५-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-९५'**।

मार्च-अप्रैल १९९८-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ९ अप्रैल १९९८ को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। ३ वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर १९९८–जम्बूद्वीप स्थल पर '**राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन**', जिसका उद्घाटन किया गया– स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी २०००–तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले '**भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष**' का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर १००८ संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से ४ फरवरी २००० को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून २०००–जम्बूद्वीप स्थल पर ११ जून २००० को '**जैनधर्म की प्राचीनता**' विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी २००१–भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि–प्रयाग (इलाहाबाद) में '**तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ**' का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी–कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप ५१ फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की १४ फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप ७२ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। ४ से ८ फरवरी २००१ तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं १००८ महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् २००३–२००४–भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार–प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् २००५–२००७–भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव–६ जनवरी २००५ को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (२७ दिसम्बर २००५ तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् २००६ में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि "सम्मेदशिखर वर्ष" घोषित किया तथा दिसम्बर २००७ में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके ४ जनवरी २००८ को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष २००९ को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की गई। यह 'शांति वर्ष-२००९' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् २०१० में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित ''अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी'' द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा ९ फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् २०१२ में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् १९९५ से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को १,००,०००/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल २००६ में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् १९९९ में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् २००० में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् २००४ से प्रारंभ २५०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् २००३ में स्थापित २५,०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् २०१० से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् २०१२ से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित '**भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड**', '**ब्राह्मी पुरस्कार**', '**भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार**', '**गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार**', '**हीरक जयंती पुरस्कार**' तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव''-१८ अक्टूबर २०१३ के अवसर पर ८००००/-रुपये की राशि वाला '**अमृत महोत्सव पुरस्कार**' भी प्रदान किया गया।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हिक[1] स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना–सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

–लघु श्रुतभक्ति–

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामि' स्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

–आचार्यभक्ति–

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय–

नमोऽस्तु पौर्वाण्हिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें)

1. मध्यान्ह में स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हिक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारंभ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।१।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं इदं शास्त्रं जिनागम रहस्य[१] नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवाः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री गणिनी ज्ञानमतीविरचितं[२]।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।४।।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

१. जिस ग्रंथ का स्वाध्याय करना हो उसका नाम लेना चाहिए।
२. उस ग्रंथ के जो रचयिता हों उनका नाम लेना चाहिए।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

जिनागम रहस्य

(संकलन-गणिनी ज्ञानमती)

अनादि महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

मंगलाचरणम्

श्री शान्तिनाथमानम्य, कुंथुनाथ जिनेश्वरम्।
अरनाथमपि स्तौमि, रत्नत्रयविशुद्धये।।१।।

अन्तिमं तीर्थकर्तारं, महावीरजिनं स्तुवे।
भक्त्या वन्दे स्वसिद्ध्यर्थं, सर्वांस्तीर्थंकरानपि।।२।।

इन्द्रभूतिगणीन्द्रोऽयं, वीरस्य प्रथमोऽभवत्।
सप्तर्द्धीशश्चतुर्ज्ञान-धारी तं नौम्यहं मुदा।।३।।

जिनवाणीं मुदा नौमि, सर्वभाषामयीमिह।
यासां कृपाप्रसादेन तरिष्यामि भवाम्बुधिम्।।४।।

श्रीगणधरदेवस्य, चैत्यभक्त्यादिभारतीः।
प्रतिक्रमणसूत्राणि, प्राप्य धन्या वयं भुवि।।५।।

पायं पायं गणाधीश-वाणीं पीयूषसदृशीम्।
पुष्टास्तुष्टाश्च तृप्ताश्च, जाताः स्वस्था अपि वयं।।६।।

श्री गुणधरमाचार्यं, वन्दे कषायप्राभृतम्।
श्री धरसेनमाचार्यं, तद्श्रुताब्धिमपि स्तुमः।।७।।

अंगांगबाह्यज्ञानांशं, श्रुतज्ञानर्द्धये नुमः।
श्री पुष्पदन्तमाचार्यं, सूरिं भूतबलिं स्तुमः।।८।।

श्री वीरसेनमाचार्यं, धवलां भारतीमपि।
भक्त्याहं कोटिशो वन्दे, मनोवाक्कायशुद्धये।।९।।

श्रीकुंदकुंदयोगीन्द्रं, नौमि भक्त्या त्रिशुद्धितः।
मनः कुंदप्रसूनं मे, तत्क्षणं प्रस्फुटी भवेत्।।१०।।

गीर्वाणी सूत्रकर्तार-मुमास्वामिमुनीश्वरम्।
तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थं च वन्दे सम्यक्त्वशुद्धये।।११।।

ये सर्वे ग्रन्थकर्तारः टीकाकाराश्च सूरयः।
तेषां ग्रन्थाः प्रमाणं हि, पौर्वापर्याविरोधिनः।।१२।।

पूर्वाचार्याः प्रमाणा मे तेषां ग्रन्था अपि सदा।
प्रमाणं मन्यमानाश्च, भवामः शुद्धदृष्टयः।।१३।।

श्री गौतमादिदेवानां, इह कृतिष्विह मनाक् बुधाः।
संशोधयन्तु मा यूयं, यदि स्युः पापभीरवः।।१४।।

टीकाकाराननुसृत्य, मन्यन्तां द्वौ मतावपि।
परिवर्तं न कुर्वन्तु, श्रद्धया श्रद्धधत्वपि।।१५।।

उद्धृत्योद्धृत्य रत्नानि, श्रीजिनागमवार्धितः।
जिनागमरहस्याख्यं, ग्रन्थं संकलयाम्यहम्।।१६।।

एष ग्रन्थो हि भव्यानां, सम्यग्दर्शनशुद्धये।
भवेत् ज्ञानर्द्धये चापि, दद्यात् मह्यं च वः श्रियम्।१७।।

युग की आदि में सर्वप्रथम भगवान ऋषभदेव को वटवृक्ष के नीचे प्रयाग में दिव्यकेवलज्ञान प्रगट हुआ, उसी क्षण इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने आकाश में—पृथ्वीतल से पांच हजार धनुष—बीस हजार हाथ ऊपर दिव्य समवसरण की रचना कर दी। उस समय पुरिमतालपुर के राजा श्री ऋषभदेव के ही तृतीयपुत्र श्री ऋषभसेन आये और प्रभु से जैनेश्वरी दीक्षा लेकर प्रथम गणधर हो गये। पुत्री ब्राह्मी भी अपनी छोटी बहन सुंदरी के साथ आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में प्रमुख गणिनी हो गईं।

भगवान श्री ऋषभदेव की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी जिसे गणधरदेव ने द्वादशांगरूप में निबद्ध किया था। यह पावन तिथि फाल्गुन कृष्णा एकादशी 'श्री ऋषभदेव शासन पर्व" के रूप में मान्य हुई है।

आगे श्री अजितनाथ तीर्थंकर से लेकर तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान तक चली आ रही थी। इसी तीर्थंकर परंपरा में अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी हुये हैं। विपुलाचल पर्वत पर श्री इन्द्रभूति ब्राह्मण ने श्री महावीर स्वामी के समवसरण में जैनेश्वरी दीक्षा लेकर प्रथम गणधर पद प्राप्त किया। वह पावनतिथि श्रावणकृष्णा एकम्—'वीरशासन जयंती पर्व' के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है। इन इन्द्रभूति का गोत्र "गोतम' होने से ये श्री गौतमस्वामी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

धवला ग्रंथ में कहा है कि—नवकेवललब्धि से समन्वित केवलज्ञानी महावीर स्वामी "अर्थकर्ता" हैं एवं श्री इन्द्रभूति गणधरदेव ने "**बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा।**"[१] बारह अंग और चौदहपूर्वों रूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में (४८ मिनट में) क्रम से रचना की है अतः "ग्रंथकर्ता" श्री गौतमस्वामी हैं। यह द्वादशांग ग्रंथ लिखे नहीं जा सकते हैं। मौखिक विद्या परम्परागत श्रुतकेवली तक रही है।

इन श्रीगौतमगणधरदेव के मुखकमल से निर्गत वाणीरूप से आज वर्तमान में छह ग्रन्थ—कृतियाँ उपलब्ध हैं। १. चैत्यभक्ति, २. वीरभक्ति, ३. गणधरवलयमंत्र, ४. यतिप्रतिक्रमण-पाक्षिक प्रतिक्रमण, ५.दैवसिक प्रतिक्रमण व ६. श्रावक-प्रतिक्रमण।

इनकी संस्कृत टीकायें भी उपलब्ध हैं।

इसके पश्चात् भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद लगभग पांच सौ छप्पन वर्ष बाद श्री गुणधर आचार्य ने 'कसायपाहुड' नाम से ग्रन्थ रचना की है। पुनः श्रीधरसेनाचार्य से अध्ययन करके ज्ञान को प्राप्त कर श्री पुष्पदंत व श्रीभूतबलि इन दोनों आचार्यों ने लगभग वीर नि. सं. ६०० में (सन् ७३ में) षट्खण्डागम ग्रन्थों की रचना की है। अर्थात् लगभग उन्नीस सौ वर्ष पूर्व ये ग्रंथ रचे हैं। इन ग्रन्थों पर भी अनेक आचार्यों ने टीकायें व भाष्य आदि लिखे हैं। वर्तमान में वे टीकायें उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से श्री यतिवृषभाचार्य विरचित 'कसायपाहुड़' ग्रन्थ पर चूर्णिसूत्र व षट्खंडागम ग्रन्थों पर श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीका तथा चूर्णिसूत्रसहित कसायपाहुड़ पर जयधवला टीकायें उपलब्ध हैं।

अनंतर श्रीकुंदकुंददेव विरचित समयसार, मूलाचार, रयणसार आदि ग्रन्थ व श्री उमास्वामी आचार्य विरचित तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ आदि अनेक आचार्यों द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ वर्तमान में मुद्रित व अनुवाद सहित उपलब्ध हो रहे हैं।

श्री गौतमस्वामी विरचित प्रतिक्रमणपाठ में गणधरवलय मंत्र, नव पदार्थ, बारह तप, चार बंध प्रत्यय, पच्चीस भावनायें, श्रावक के बारह व्रत आदि विषयों में षट्खंडागम ग्रन्थ व श्री कुंदकुंददेव कृत ग्रन्थों में

१. धवला पु. १ पृ. ६६।

समानता रही है। श्री उमास्वामी से लेकर आगे के आचार्यों के ग्रन्थों में क्रम आदि में अंतर भी दिखता है। गणधर-वलय मंत्र श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित में और षट्खंडागम में संख्या में अंतर है।

इन ग्रन्थों के टीकाकारों ने अपने-अपने मूलकर्ता के ग्रन्थों के पाठ में कुछ भी परिवर्तन न करके पाठ को ज्यों की त्यों रखकर उसी के अनुसार टीकायें की हैं। ऐसे ही श्री उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकारों ने भी अपने मूलग्रंथ के पाठ को लेकर ही टीकायें की हैं। कहीं पर भी मूल में परिवर्तन या परिवर्धन नहीं किया है।

आश्चर्य है कि वर्तमान में कोई-कोई विद्वान् श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण पाठ में श्री उमास्वामी आचार्य के अनुसार पाठ परिवर्तन तथा कहीं-कहीं पर परिवर्धन आदि भी करने लगे हैं। यह सर्वथा उचित नहीं है।

इनके कुछ उद्धरण देखिये-

(१) "**देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो**"[१] प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में यह पाठ है।

देवा अपि तस्य प्रणमन्ति यस्य धर्मे सदा मनः।

देवा वि तं णमंसंति[२] (परिवर्तित पाठ) श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह आदि में है।

(२) "**अवि दंतंतरसोहणमेत्तं पि**[३]" अपि च दन्तान्तर शोभनमात्रमपि अर्थात् दांतों की शोभा के लिए जो कुछ लगाया है सोना आदि भी दाँतों पर जड़े जाकर शोभा की जाती है, इत्यादि।

'**अवि दंतंतरसोहणणिमित्तं पि**[४]' (परिवर्तित पाठ) श्रमणचर्या, विमलभक्ति संग्रह आदि में है।

ऐसे ही अनेक जगह पाठ बढ़ाये हैं, जैसे— कृतिकर्म विधि में सामायिक दण्डक में "णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं" पाठ है। उसमें "णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं तवाणं" पाठ बढ़ा दिया है। यह भी गलत है।

टीकाकारों तक तथा सन् १९८७ तक ये पाठ ज्यों की त्यों रहे हैं, बाद में परिवर्तन व परिवर्धन किये जा रहे हैं।

श्री गौतमस्वामी की कृतियों में परिवर्तन-परिवर्धन कहां तक उचित है ? विचार करें।

कोई-कोई विद्वान ऐसा कह देते हैं कि हस्तलिखित प्रतियों से प्रतिलिपि करने वालों से यह भूल हुई होगी अतः हम सुधार रहे हैं। यह भी कथन उचित नहीं है क्योंकि टीका ग्रन्थों में वही देखा जा रहा है। संशोधन से पहले विद्वानों को टीका ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये।

और भी अनेक विषय हैं जिनमें अंतर है। जैसे कि सोलहकारण भावनाओं के नाम व क्रम में अंतर है। बारह भावनाओं का क्रम, अरहंतदेव के चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, आचार्यों के छत्तीस मूलगुण आदि में भी श्री भूतबलि आचार्य, श्री कुंदकुंददेव, श्री यतिवृषभाचार्य, मूलाचार ग्रन्थ में व उमास्वामी आचार्यकृत तत्त्वार्थसूत्र व श्री पूज्यपादाचार्य कृत नंदीश्वर भक्ति, अनगारधर्मामृत आदि में अंतर है।

मेरा अभिप्राय यही है कि जिन-जिन आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में जो पाठ रखे हैं, उन-उन ग्रंथों में वे ही पाठ पढ़ने व छपवाने चाहिये। दूसरे ग्रन्थों से भी उनमें पाठ नहीं बदलना चाहिये।

इन्हीं-इन्हीं विषयों को यथास्थान इस ग्रन्थ में हम दिखा रहे हैं।

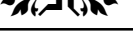

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८०। २. श्रमणचर्या पृ. १६४। ३. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १२७। ४. श्रमणचर्या पृ. १३६।

(1) णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।१।।[१]

इदाणिं देवदा-णमोक्कार-सुत्तस्सत्थो उच्चदे।[२]

'णमो अरिहंताणं' अरिहननादरिहन्ता। नरकतिर्यक्कुमानुष्य-प्रेतावास-गत्राशेषदुःखप्राप्तिनिमित्तत्वादरिर्मोहः। तथा च शेषकर्मव्यापारो वैफल्यमुपेयादिति चेन्न, शेषकर्मणां मोहतन्त्रत्वात्। न हि मोहमन्तरेण शेषकर्माणि स्वकार्यनिष्पत्तौ व्यापृतान्युपलभ्यन्ते, येन तेषां स्वातन्त्रयं जायेत। मोहे विनष्टेऽपि कियन्तमपि कालं शेषकर्मणां सत्त्वोपलम्भान्न तेषां तत्तन्त्रत्वमिति चेन्न, विनष्टेऽरौ जन्ममरणप्रबन्ध-लक्षणसंसारोत्पादनसामर्थ्यमन्तरेण तत्सत्त्वस्यासत्त्वसमानत्वात् केवलज्ञानाद्यशेषात्मगुणविभवप्रतिबन्धनप्रत्ययसमर्थत्वाच्च। तस्यारेर्हननादरिहन्ता[३]**।**

णमोकार महामंत्र

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।।१।।

अब देवता-नमस्कार सूत्र का अर्थ कहते हैं। 'णमो अरिहंताणं' अरिहंतों को नमस्कार हो। अरि अर्थात् शत्रुओं के 'हननात्' अर्थात् नाश करने से 'अरिहंत' हैं। नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायों में निवास करने से होने वाले समस्त दुःखों की प्राप्ति का निमित्तकारण होने से मोह को 'अरि' अर्थात् शत्रु कहा है।

शंका—केवल मोह को ही अरि मान लेने पर शेष कर्मों का व्यापार निष्फल हो जाता है।

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, बाकी के समस्त कर्म मोह के ही आधीन हैं। मोह के बिना शेष कर्म अपने अपने कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करते हुए नहीं पाये जाते हैं। जिससे कि वे भी अपने कार्य में स्वतन्त्र समझे जाय। इसलिये सच्चा अरि मोह ही है और शेष कर्म उसके आधीन हैं।

शंका—मोह के नष्ट हो जाने पर भी कितने ही काल तक शेष कर्मों की सत्ता रहती है, इसलिये उनका मोह के आधीन होना नहीं बनता ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, मोहरूप अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म, मरण की परंपरारूप संसार के उत्पादन की सामर्थ्य शेष कर्मों में नहीं रहने से उन कर्मों का सत्त्व असत्त्व के समान हो जाता है। तथा केवलज्ञानादि संपूर्ण आत्म-गुणों के आविर्भाव के रोकने में समर्थ कारण होने से भी मोह प्रधान शत्रु है और उस शत्रु के नाश करने से 'अरिहंत' यह संज्ञा प्राप्त होती है। अथवा, रज अर्थात् आवरण कर्मों के नाश करने से 'अरिहंत' हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म धूलि की तरह बाह्य और अन्तरंग स्वरूप समस्त त्रिकाल-गोचर अनन्त अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायस्वरूप वस्तुओं को विषय करने वाले बोध और अनुभव के

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक १ पृ. ८। २. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक १, पृ. ४३ से ४५ तक। ३. रागद्दोसकसाए य इंदियाणि य पंच य। परीसहे उवसग्गे णासयतो णमोरिहा।। मूलाचा. ५०४. अट्ठविहं पि य कम्मं अरिभूयं होइ सव्वजीवाणं। तं कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति।। इंदियविसयकसाए परीसहे वेयणा उवस्सग्गे। एए अरिणो हंता अरिहंता तेण वुच्चंति। वि. भा. ३५८३, ३५८२.

रजोहननाद्वा अरिहन्ता। ज्ञानदृगावरणानि रजांसीव बहिरङ्गान्तरङ्गाशेषत्रिकालगोचरानन्तार्थव्यञ्जनपरिणामात्मकवस्तुविषयबोधानुभवप्रतिबन्धकत्वाद्रजांसि।

मोहोऽपि रजः, भस्मरजसा पूरिताननानामिव भूयो मोहावरुद्धात्मनां जिह्मभावोपलम्भात् किमिति त्रितयस्यैव विनाश उपदिश्यत इति चेन्न, एतद्विनाशस्य शेषकर्मविनाशाविनाभावित्वात्। तेषां हननादरिहन्ता।

रहस्याभावाद्वा अरिहन्ता। रहस्यमन्तरायः, तस्य शेषघातित्रितयविनाशाविनाभाविनो भ्रष्टबीजवन्निःशक्तीकृताघातिकर्मणो हननादरिहन्ता।

अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्तः[१]। स्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणेषु देवकृतानां पूजानां देवासुरमानवप्राप्तपूजाभ्योऽधिकत्वादतिशयानामर्हत्वाद्योग्यत्वादर्हन्तः।

प्रतिबन्धक होने से रज कहलाते हैं। मोह को भी रज कहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार जिनका मुख भस्म से व्याप्त होता है उनमें जिम्हभाव अर्थात् कार्य की मन्दता देखी जाती है, उसी प्रकार मोह से जिनका आत्मा व्याप्त हो रहा है उनके भी जिम्हभाव देखा जाता है, अर्थात् उनकी स्वानुभूति में कालुष्य, मन्दता या कुटिलता पाई जाती है।

शंका—यहाँ पर केवल तीनों अर्थात् मोहनीय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के ही विनाश का उपदेश क्यों दिया गया है ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि शेष सभी कर्मों का विनाश इन तीन कर्मों के विनाश का अविनाभावी है अर्थात् इन तीन कर्मों के नाश हो जाने पर शेष कर्मों का नाश अवश्यंभावी है। इस प्रकार उनका नाश करने से अरिहंत होते हैं।

अथवा 'रहस्य' के अभाव से भी अरिहंत होते हैं। रहस्य अन्तराय कर्म को कहते है। अन्तराय कर्म का नाश शेष तीन घातिया कर्मों के नाश का अविनाभावी है और अन्तराय कर्म के नाश होने पर 'अघातिया कर्म भ्रष्ट बीज के समान निःशक्त हो जाते हैं, ऐसे अन्तराय कर्म के नाश से अरिहंत होते हैं।

अथवा सातिशय पूजा के योग्य होने से अर्हन्त होते हैं', क्योंकि, गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण इन पांचों कल्याणकों में देवों द्वारा की गई पूजायें, देव, असुर और मनुष्यों को प्राप्त पूजाओं से अधिक अर्थात् महान् हैं, इसलिये इन अतिशयों के योग्य होने से अर्हन्त होते हैं।

---

१. अरहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए। रजहंता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चंदे।। मूलाचार ५०५;

णमोकार मंत्र के अक्षर-पद-मात्रा आदि का वर्णन

अस्मिन् मंत्रे अनादिनिधनपंचपरमेष्ठिनां नमस्कारो विहितः।[१]

णमोकारमहामंत्रस्याक्षरपदमात्रादयो वर्ण्यन्ते–

अस्मिन् महामंत्रे पंचत्रिंशदक्षराः, पंच पदानि, चतुस्त्रिंशत् स्वराः त्रिंशद् व्यंजनानि सन्ति। अत्र सर्वे वर्णाः अजन्ताः, तर्हि पंचत्रिंशदक्षरेषु चतुस्त्रिंशत्स्वराः कथमिति चेत्, उच्यन्ते 'णमो अरिहंताणं' अस्मिन् पदे सप्ताक्षराः षट् स्वराः ज्ञातव्याः। मंत्रशास्त्रस्य व्याकरणानुसारेण 'अरिहंताणं' अस्याकारस्य लोपः भवति। प्राकृतव्याकरणे ''एङः'' नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः सन्धिः प्राकृते तु न भवति। यथा— देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि। उपर्युक्तसूत्रानुसारेण सन्धिर्न भवत्यतः अकारस्यास्तित्वं यथावत् दृश्यते, अकारस्य लोपः खंडाकारो वा नास्ति। किन्तु मंत्रशास्त्रे 'बहुलम्' इति सूत्रानुसारेण 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य' इति नियमेन 'अ लोपो' विकल्पेनातः अस्मिन् पदे षडेव स्वराः। इति न्यायेन चतुस्त्रिंशत्स्वरा भवन्ति।[२]

तथैव अष्टपंचाशन्मात्राः सन्ति। तावदष्टपंचाशन्मात्रा दर्शयन्ति–

। ऽ ।। ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ।। ऽ ऽ
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।

णमोकार मंत्र के अक्षर-पद-मात्रा आदि का वर्णन

इस मंत्र में अनादि निधन पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।

णमोकार महामंत्र के अक्षर-पद-मात्रा आदि का वर्णन करते हैं–

इस महामंत्र में ३५ अक्षर हैं, पाँच पद हैं, चौंतीस स्वर हैं और तीस व्यंजन हैं। यहाँ सभी वर्ण अजन्त हैं तब पैंतीस अक्षरों में चौंतीस स्वर कैसे हो सकते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं–

''णमो अरिहंताणं'' इस प्रथम पद में कुल सात अक्षर हैं जिनमें ६ स्वर जानना चाहिए। मंत्र व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'अरिहंताणं' पद के अकार का लोप हो जाता है।

प्राकृत व्याकरण में ''एङ''–नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः सन्धिः प्राकृते तु न भवति। यथा देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं। इत्यादि सूत्र के अनुसार सन्धि नहीं होती है अतः अकार का अस्तित्व ज्यों का त्यों रहता है, अकार का लोप अथवा खंडाकार (ऽ) नहीं होता है। किन्तु मंत्रशास्त्र में ''बहुलम्'' इस सूत्र के अनुसार 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य' इस नियम से 'अ' का लोप विकल्प से हो जाता है, अतः 'णमो अरिहंताणं' इस पद में छह स्वर ही माने गये हैं। इस न्याय से पूरे णमोकार मंत्र में चौंतीस स्वर होते हैं। इसी प्रकार से उसमें अट्ठावन मात्रा हैं। उन अट्ठावन मात्राओं का दिग्दर्शन कराते हैं–

।ऽ ।। ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ। । ऽ ऽ
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक-१ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका) पृ. २६ से ३० तक। २. 'मंगलमंत्र णमोकार-एक अनुचिन्तन' पुस्तक पृ. ४३।

। ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अस्मिन् मंत्रे प्रथमपदे एकादश (११) द्वितीयपदे अष्टौ। (८) तृतीय पदे एकादश (११) चतुर्थपदे द्वादश (१२) पंचमपदे षोडश (१६) मात्रा गण्यन्ते (५८) अथवा 'अरिहंताणं' अस्य अकारलोपस्य मात्राभावे 'सिद्धाणं' इति पदे संयुक्ताक्षरस्य पूर्वो दीर्घः इति नियमेनापि अष्टपंचाशन्मात्राः सन्तीति ज्ञातव्यं।

अत्र मंत्रस्य विश्लेषणे कृते सति–

ण् + अ + म् + ओ + अ + र्+ इ + ह् + अं + त् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + स् + इ + द् + ध् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + आ + इ + र् + इ + य् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + उ + व् + अ + ज् + झ् + आ + य् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + ल् + ओ + ए + स् + अ + व् + व् + अ + स् + आ + ह + ऊ + ण् + अं।

। ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

इस मंत्र के प्रथम पद में ग्यारह मात्राएँ हैं, द्वितीय पद में आठ, तृतीय पद में ग्यारह, चतुर्थ पद में बारह और पंचम पद में सोलह मात्राएँ ऐसे कुल मिलाकर ११ + ८ + ११ + १२ + १६ = ५८ मात्राएँ हैं। अथवा अरिहंताणं के अकार का लोप हो जाने पर एक मात्रा का वहाँ अभाव हो गया और "सिद्धाणं" इस पद में "संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर दीर्घ हो जाता है" इस नियम से भी अट्ठावन मात्राएँ हो जाती हैं।

भावार्थ—यहाँ त्रिविक्रम प्राकृत व्याकरण के अनुसार नियम बताया है कि एकार और ओकार से अवर्ण के आने पर संधि नहीं होती है इसीलिए णमो अरिहंताणं में ओ के बाद अ ज्यों का त्यों का रखा गया है किन्तु मंत्र शास्त्र के विधान से अ का लोप कर देने पर णमो अरिहंताणं पद में १० मात्राएँ ही रह जाती हैं और इसी प्रकार से ५८ मात्राओं का जोड़ भी समुचित बैठता है। तब १० + ९ + ११ + १२ + १६ = ५८ का योग बन जाता है।

इस मंत्र का विश्लेषण करने पर–

ण् + अ + म् + ओ + अ + र् + इ + ह् + अं + त् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + स् + इ + द् + ध् + आ + ण् + अं

ण् + अ + म् + ओ + आ + इ + र् + इ + य् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + उ + व् + अ + ज् + झ् + आ + य् + आ + ण् + अं।

ण् + अ + म् + ओ + ल् + ओ + ए + स् + अ + व् + व् + अ + स् + आ + ह् + ऊ + ण् + अं।

इन सभी वर्णों में स्वर और व्यंजन पृथक् करने पर चौंतीस स्वर और तीस व्यंजन इस प्रकार चौंसठ वर्ण होते हैं क्योंकि यहाँ "द्धा ज्झा व्व" इन संयुक्ताक्षरों के तीन वर्ण (व्यंजन) ही ग्रहण किए हैं न कि छह, पुनः यहाँ "अ इ उ ए" "ज ञ ण त द ध य र ल व स ह" ये स्वर व्यंजन ही मूलरूप से इस मंत्र में समाहित हैं तथा मूलवर्ण भी चौंसठ ही होते हैं।

एषु स्वरव्यञ्जनानां पृथक्करणे चतुस्त्रिंशत्वराः त्रिंशद्व्यञ्जनानि इति चतुःषष्टिः वर्णाः भवन्ति।

किं च–'द्धा ज्झा व्व' इति संयुक्ताक्षराणां त्रय एव वर्णा गृहीता अत्र। पुनरत्र ''अ, इ, उ, ए'', ''ज, झ, ण, त, द, ध, य, र, ल, व, स, ह'' इति मूलस्वरव्यञ्जनानि समाहितानि भवन्ति। तथा च मूलवर्णा अपि चतुःषष्टिरेव। अतएव अस्मिन् महामंत्रे द्वादशांगः समाहितोऽस्ति–

''चउसट्ठिपदं विरलिय, दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण, सुदणाणस्सक्खरा होंति।।''

इति नियमेन गुणकारे कृते सति–

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य, एक्कं छक्केक्कगो य पणयं च।।

इति गाथासूत्रेण–

''१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५'' समस्तद्वादशांगश्रुतज्ञानस्याक्षराः भवन्ति। अतएव णमोकारमहामंत्रे सर्वं द्वादशांगश्रुतज्ञानं समाहितं वर्तते।[१] अथवायं मंत्रो द्वादशांगश्रुतज्ञानरूप एव। सर्वमंत्राणामाकरश्च वर्तते। अस्य माहात्म्यं शारदापि वर्णयितुं न शक्नोति। उक्तं च श्रीमदुमास्वामिना–

एकत्र पंचगुरु मंत्रपदाक्षराणि, विश्वत्रयं पुनरनन्तगुणं परत्र।
यो धारयेत्किल तुलानुगतं तथापि, वंदे महागुरुतरं परमेष्ठिमंत्रम्।।

अत्रपर्यन्तं णमोकारमहामंगलगाथासूत्रस्य संक्षिप्तार्थः कृतः।

भावार्थ—इस महामंत्र में समस्त स्वर-व्यंजनों के अक्षर जोड़ने पर तो ६७ वर्ण होते हैं किन्तु जहाँ इसकी व्याख्या मिलती है वहाँ ६४ अक्षर ही माने गये हैं किन्तु कहीं खुलासा नहीं आया कि कौन से वर्णों को इसमें नहीं जोड़ा गया है। अतः संस्कृत टीका में मैंने उपर्युक्त तीन वर्णों के संयुक्ताक्षरों में एक-एक व्यंजन हटा कर ६४ मूलवर्णों की संख्या का दिग्दर्शन कराया है जो समुचित ही प्रतीत होता है।

अतएव इस महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत समाहित है, ऐसा जानना चाहिए।

गाथार्थ—उक्त चौंसठ अक्षरों को अलग-अलग लिखकर (विरलन करके) प्रत्येक के ऊपर दो का अंक देकर परस्पर में सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्ध—प्राप्त हुई राशि—संख्या में एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस नियम से गुणकार करने पर—

गाथार्थ—एक, आठ, चार, चार, छह, सात, चार, चार, शून्य, सात, तीन, सात, शून्य, नौ, पाँच, पाँच, एक, छह, एक, पाँच यह संख्या आती है।

इस गाथा सूत्र के अनुसार—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ये समस्त द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं। अतएव णमोकार महामंत्र में द्वादशांगरूप समस्त—सम्पूर्ण श्रुतज्ञान समाहित है ऐसा जानना चाहिए अथवा यह मंत्र बारह अंगमयी श्रुतज्ञानरूप ही है, समस्त मंत्रों की यह खानि है अर्थात् इस मंत्र से ही सभी मंत्र उत्पन्न होते हैं अतः ८४ लाख मंत्रों का उद्भव इस णमोकार मंत्र से ही माना जाता है। इसका

१. 'मंगलमंत्र णमोकार' : एक अनुचिन्तन पुस्तक, पृष्ठ ७६।

माहात्म्य—अतिशय शारदा माता—साक्षात् सरस्वती देवी भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

श्री उमास्वामी आचार्यवर्य ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—यदि कोई व्यक्ति तराजू के एक पलड़े पर पंचपरमेष्ठी के णमोकार के पद और अक्षरों को और दूसरे पलड़े पर अनन्तगुणात्मक तीनों लोकों को रखकर तुलना करे तो भी वह णमोकार मंत्र वाले पलड़े को ही अधिक भारी (वजनदार) अनुभव करेगा, उस महान गौरवशाली णमोकार मंत्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—णमोकार मंत्र पूजन की जयमाला में मैने भी श्री उमास्वामी के इन्हीं भावों को दर्शाते हुए लिखा है कि–

शेर छंद— इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढ़ाऊँ।
इक ओर महामंत्र अक्षरों को धराऊँ।।
इस मंत्र के पलड़े को उठा ना सके कोई।
महिमा अनन्त यह धरे न इस सदृश कोई।।

तात्पर्य यह है कि पंचनमस्कार मंत्र तीनों लोकों में सारभूत—महान है, इसके चिन्तन, मनन और ध्यान से परमेष्ठी पदों की प्राप्ति तो परम्परा से होती ही है तथा यह संसार में भी लौकिक सम्पदाओं को प्रदान कराता है। पुराण ग्रंथों में अनेकों उदाहरण मिलते हैं कि इस मंत्र को तिर्यंच प्राणियों को भी मरणासन्न अवस्था में सुनाने से उनको देवगति प्राप्त हो गई। इसका माहात्म्य जानकर योगीजन भी जीवन के अन्तकाल तक इस महामंत्र का आश्रय लेकर अपने समाधिमरण की सिद्धि करते हैं।

इस षट्खण्डागम ग्रंथ में आचार्य श्री पुष्पदंत–भूतबली भगवन्तों ने प्रारंभिक मंगलाचरण में ही इस महामंत्र को निबद्ध कर इसके अतिशय को और भी वृद्धिंगत कर दिया है।

णमोकार मंत्र में पाठ भेद

(विभिन्न ग्रंथों में)

(१) षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक-१

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं[१]।।१।।

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, और लोक में सर्वसाधुओं को नमस्कार हो।

इसमें 'अरिहंताणं' एवं 'आइरियाणं' पाठ है।

(२) क्रियाकलाप–श्री गौतम स्वामि विरचित यतिप्रतिक्रमण में 'णमो अरहंताणं' एवं 'णमो आइरियाणं' पाठ है।

---

१. षट्खण्डागम धवला पु. १ पृ. ८।

यथा— णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।[१]

पुनः पाक्षिकप्रतिक्रमण के इस श्लोक में भी 'अरहंताणं' पाठ है।

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं लोयम्मि य सव्वसाहूणं[२]**।।७।।**

(३) प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी—इसकी टीका में प्रायः अरहंत पाठ है।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में सर्वत्र 'णमो अरहंताणं व 'णमो आइरियाणं' ऐसे पद हैं तथा 'अरहंतसक्खियं' में भी अरहंत पद है।

णमोक्कारपदे णमो अरहंताणमित्यादिलक्षणे पंचनमस्कारपदे याऽत्यासादनता तस्यां। **अरहंतपदे इत्यादि।** अर्हदादीनां वाचके पदे याऽत्यासादनता तस्यां।[३]

'णमो णिसीहिए' इति पाठे **'णमोत्थु दे'** इत्यस्याऽरहंतेत्यादिभिः सम्बन्धः। **हे अरहंत।** अर्हन् घातिकर्मक्षयकारक ते तुभ्यं नमोऽस्तु।[४]

तथा–**मम मंगलं।** ममगालननिमित्तं भवन्तु। के ते ? **अरहंता य।** अर्हन्तश्च।[५]

तथा–**गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं।** गुरुवो दीक्षागुरवः शिक्षागुरव इत्यादयः। आचार्याः पञ्चविधाचारचरणा-चरणकुशलाः। उपाध्याया अंगप्रविष्टांगबाह्यश्रुतोपदेशकाः। एतेषां च याः काश्चिन्निषीधिकाः।[६]

चउवीसाए अरहंतेसु।। चतुर्विंशतितीर्थकरदेवेषु यथाकालं वन्दनादिकं कर्तव्यम्।[७]

जाव अरहंताणमित्यादि। यावत्कालमर्हतां देशतः साकल्यतश्च कर्मारातिघातिनां पंचपरमेष्ठिनां।[८]

(४) प्रतिष्ठा तिलक (सोलापुर से प्रकाशित)

ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। इत्यपराजित मंत्रमष्टशतवारान्जपेत्।।[९] इसमें 'अरहंताणं' एवं 'आइरीयाणं' पाठ है। इसमें णमोकार मंत्र को अपराजित मंत्र लिखा है।

(५) प्रतिष्ठासार संग्रह (हस्तलिखित)—श्री वसुनंदि आचार्य विरचित

ऊँ णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।[१०]

इसमें 'णमो अरहंताणं व णमो आयरियाणं' पाठ है।

(६) प्रतिष्ठासारोद्धार—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।[११] **इसमें 'णमो अरहंताणं एवं णमो आइरियाणं'** पाठ है।

(७) ज्ञानार्णव में—'णमो अरहंताणं' पाठ है।

'अरहंत' इन चार अक्षरों का मन्त्र है सो धर्म अर्थ काम मोक्षरूप फल का देने वाला है, इसको जो चार सौ

१-२. क्रियाकलाप पृ. ९२, १०५। ३-४-५-६-७-८. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी-पृ. १३९, २१, २४, २८, १५१। ९. प्रतिष्ठा तिलक पृ. २३। १०. प्रतिष्ठासार संग्रह (हस्तलिखित) पृ. २। ११. प्रतिष्ठासारोद्धार पृ. ८१।

बार जप करता है वह एक उपवास का फल पाता है।।५१।।[१]

जगत में अतिशयरूप तेरह अक्षरों से उत्पन्न हुई यह विद्या मोक्ष के महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की पंक्ति है। वह तेरह अक्षर का मंत्र इस प्रकार है **'ऊँ अर्हत् सिद्ध सयोग केवली स्वाहा'**[२]।।५८।।

ऊँ णमो अरहंताणमिति वर्णानपि क्रमात्।
एकशः प्रतिपत्रं तु तस्मिन्नेव निवेशयेत्।।६५।।[३]

अर्थ—ऊँ णमो अरहंताणं 'ये आठ अक्षर मुख में स्मरण किए हुए उस कमल के आठों पत्रों पर क्रम से एक एक अक्षर का स्थापन कर ध्यान करना चाहिए।।६५।।

यदि साक्षात्समुद्विग्नो जन्मदावोग्रसंक्रमात्।
तदा स्मरादिमन्त्रस्य प्राचीनं वर्णसप्तकम्।।८५।।[४]

अर्थ—हे मुने, यदि तू संसाररूप अग्नि के तीव्र संक्रम (संयोग) से उद्वेगरूप हुआ है अर्थात् दुःखी हुआ है तो आदि मंत्र जो पंचनमस्कार मंत्र है, उसके पहले सात अक्षरों का ध्यान कर। वे सात अक्षर **'णमो अरहंताणं'** ये हैं।।८५।।

नियमसार में—'अरिहंत' पाठ आया है।

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया।
चोत्तिस अदिसअजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति।।७१।।[५]

अर्थ—जो घनघाति कर्मों से रहित, केवलज्ञानादि परम गुणों से सहित और चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं, ऐसे अर्हंतदेव होते हैं।

नियमसार में 'आइरिया' पाठ आया है–

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा आइरिया एरिसा होंति[६]**।।७३।।**

अर्थ—जो पाँच आचार से परिपूर्ण हैं, पांच इन्द्रियरूपी हाथी के दर्प का दलन करने वाले हैं, धीर हैं, गुणों से गंभीर हैं, ऐसे आचार्य होते हैं।

(९) मूलाचार में—'अरहंताणं' और 'आइरिय' पाठ आया है।

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय उवज्झाए लोगम्मि य सव्वसाहूणं।।५०२।।[७]

गाथार्थ—अर्हन्तों को, सिद्धों को, आचार्यों को, उपाध्यायों को और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार करके मैं आवश्यक अधिकार कहूँगा।

अर्हंत शब्द की व्युत्पत्ति—अरिहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहंता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चंदे।।५०५।।

गाथार्थ—नमस्कार के योग्य हैं, लोक में उत्तम देवों द्वारा पूजा के योग्य हैं, आवरण का और मोहनीय

१-२-३-४. ज्ञानार्णव पृ. ३१२। ५. नियमसार प्राभृत पृ. १६६ श्लोक ७१। ६. नियमसार पृ. १६९ गाथा ७३। ७. मूलाचार पूर्वार्ध पृ. ३८४ से ३८६।

शत्रु का हनन करने वाले हैं, इसलिए वे अर्हंत कहे जाते हैं।

नमस्कार का फल—अरहंत णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण।।५०६।।

गाथार्थ—जो प्रयत्नशील भाव से अर्हन्त को नमस्कार करता है, वह अति शीघ्र ही सभी दुखों से छुटकारा पा लेता है।

इसी प्रकार 'आइरियाणं' व आयरियाणं ऐसे दो पाठ भी मिलते हैं। यथा–

आचार्य पद का अर्थ—

सदा आयारविद्दण्हू सदा आयरियं चरो।
आयारमायारवंतो आयरिओ तेण उच्चदे।।५०९।।

गाथार्थ—सदा आचार वेत्ता हैं, सदा आचार का आचरण करते हैं और आचारों का आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहलाते हैं।

जम्हा पंचविहाचारं आचरंतो पभासदि।
आयरियाणि देसंतो आयरिओ तेण वुच्चदे।।५१०।।

गाथार्थ—जिस कारण वे पाँच प्रकार के आचारों का स्वयं आचरण करते हुए शोभित होते हैं और अपने आचरित आचारों को दिखलाते हैं इसी कारण से वे आचार्य कहलाते हैं।

आइरिय णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण।।[१]

अर्थात् जो भव्यजीव भाव से एकाग्रचित्त होकर आचार्यों को नमस्कार करता है वह शीघ्र ही सर्वदुःखों से मुक्त हो जाता है

मंगलमन्त्र णमोकार-एक अनुचिन्तन[२]—इसमें 'णमो अरिहंताणं' एवं 'णमो आइरियाणं' पाठ आया है।

णमो अरिहंताणं-णमो-नमस्कारः। केभ्यः? अर्हद्भ्यः शक्रादि-कृतां पूजां सिद्धिगतिं चार्हन्तस्तेभ्यः। अरीन्-रागद्वेषादीन् घ्नन्तीति अरिहन्तारः तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, न रोहन्ति-नोत्पद्यन्ते दग्धकर्मबीजत्वात्—पुनः संसारे न जायन्ते इत्यरुहन्तः तेभ्योऽरुहद्भ्यो नमो नमस्कारोऽस्तु। इस व्याख्या से कहीं 'अरुहंताणं' भी माना है।

अरिहन्नाद्रजो हनन (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हतीति अर्हन्। घातिक्षयजमनन्त-ज्ञानादि-चतुष्टयं विभूत्याद्यं यस्योति वाऽर्हन्।[३]

अर्थात्-'णमो अरिहंताणं। इस पद में अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। अरि—शत्रुओं के नाश करने से 'अरिहंत' यह संज्ञा प्राप्त होती है। नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायों में निवास करने से होने वाले समस्त दुःखों की प्राप्ति का निमित्त कारण होने से मोह को अरि—शत्रु कहा गया है।

---

१. मूलाचार पूर्वार्ध पृ. ३८८–टिप्पण में यह गाथा लिखी है। यह गाथा फलटन की प्रति में अधिक है। २. मंगलमंत्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृ. ३८। ३. अमरकीर्ति विरचित नाममाला का भाष्य पृ. ५८-५९।

(११) मूलाराधना (भगवती आराधना) में अरहंत पाठ है—

अरहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहंता अरिहंति अरहंता तेण उच्चंदे[१]।।५०५।।

(१२) सामायिक भाष्य (श्री प्रभाचन्द्राचार्यकृत टीका सहित)—

इसमें 'णमो अरहंताणं' णमो आइरियाणं' पाठ है।[२]

'णमो अरिहंताणं' पाठ भी है।[३]

'अनाद्यनिधनकालप्रवृत्तानां अरहंताणमित्यादि-अरहंताणं अर्हताम्।[४]

इन उद्धरणों से महामंत्र को अनादिनिधन सिद्ध किया है।

(१३) गोम्मटसार (जीवकाण्ड) में—

अरिहाणं सिद्धाणं आइरियाणं उवज्झयाण साहूणं।
णमाणि णाममंगलमुद्दिट्ठं वीयराएहिं।।१३।।[५]

अर्थ—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के नामों को नाममंगल कहते हैं।

तिलोयपण्णत्ति में—

अरहाणं सिद्धाणं आइरिय उवज्झयाइसाहूणं।
णामाइं णाममंगलमुद्दिट्ठं वीयराएहिं।।१९।।[६]

वीतराग भगवान ने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनके नामों को नाममंगल कहा है।

(१४) प्रवचनसार में—

श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसार ग्रंथ में 'अरहंताणं' पद लिखा है–

किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं।।४।।[७]

अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव—

अर्हत्सिद्धगणधरोपाध्यायसाधुभ्यश्चैव।

अर्थ—मैं ग्रन्थकर्ता शान्त भाव जो वीतराग चारित्र उसको स्वीकार करता हूँ। क्या करके ? अरहंत जो अनन्त चतुष्टय सहित जीवन्मुक्त जिनवर हैं, उनको पहले कहा हुआ दो तरह का नमस्कार करके और उसी प्रकार सिद्धों को, आचार्यों को, उपाध्यायों के समूह को और इसी तरह सब साधुओं को नमस्कार करके।।४।।

तात्पर्य—अभिप्राय यही है कि अरिहंताणं, अरहंताणं दोनों पाठ प्रमाणीक हैं, किसी भी ग्रंथ में पाठ बदलना नहीं चाहिए।

---

१. मूलाराधना (भगवती आराधना) श्लोक ५०५। २-३-४. सामायिक भाष्य–पृ. १३, ८६, ९४। ५. गोम्मटसार जीवकाण्ड (जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका) पृ. १३। ६. तिलोयपण्णत्ति–प्रथम अधिकार पृ.-३ गाथा १९।। ७. प्रवचनसार पृ. ३, ५।

(2) चत्तारि मंगल में पाठ भेद

(१) प्राचीन पाठ—

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।[१].

(२) 'चत्तारि लोगोत्तमा' पाठ—

चत्तारिमंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगोत्तमा—अरहंत लोगोत्तमा, सिद्ध लोगोत्तमा, साहु लोगोत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमा।

चत्तारिसरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।[२]

(३) चत्तारि मंगल में 'साहू' पाठ—

चत्तारिमङ्गलं—अरहंत मङ्गलं, सिद्ध मङ्गलं, साहू मङ्गलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।[३]

(४) वर्तमान में संशोधित नया पाठ[४]—

चत्तारिमंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'–नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है। यह पाठ लगभग ४० वर्षों से अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। यह संशोधित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

'चत्तारिमंगल' पाठ को भी ग्रन्थों में अनादिनिधन माना है। देखिये प्रमाण–

---

१. क्रिया कलाप–पृ. ८९, १४४ (वीर सं. २४६२ में प्रकाशित)। २. प्रतिष्ठासारोद्धार पृ. ८१। ३. सामायिक भाष्य पृ. १३ (श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना (की संस्कृत में यह पाठ है।)। ४. श्रमणचर्या–पृ. १०, १६, ३७, ४९।

(१) प्रतिष्ठासारोद्धार में—

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारिमंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा—अरहंतलोगोत्तमा, सिद्धलोगोत्तमा, साहुलोगोत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रौं स्वाहा। अनादिसिद्धमंत्रः[१]

प्रतिष्ठासारोद्धार यह वीर सं. २४४३ में छपा है। इसमें बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ है। साहु में 'हु' ह्रस्व है। 'लोगोत्तमा' पाठ है।

(२) प्रतिष्ठासार संग्रह (हस्तलिखित) में (श्री वसुनन्दि आचार्य विरचित)—

ऊँ णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं। णमो लोये सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं। अरहंतमंगलं। सिद्धमंगलं। साऊमंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारिलोगोत्तमा। अरहंतलोगोत्तमा। सिद्धलोगोत्तमा। साऊलोगोत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि। अरहंतसरणं पव्वज्जामि। सिद्धसरणं पव्वज्जामि। साऊसरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु स्वाहा। अनादिसिद्धमंत्रः[२]।

इसमें भी बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ है। साहु' में 'हु' ह्रस्व है। 'लोगोत्तमा'' पाठ है।

(३) प्रतिष्ठापाठ में—(आचार्य श्री वसुविंदु—अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित) प्रतिष्ठापाठ जो कि वीर सं. २४५२ में प्रकाशित है। उसमें भी प्राचीन पाठ है। साहु में 'हु' ह्रस्व है। 'लोगोत्तुमा' पाठ है। इसमें भी चत्तारिमंगल के पाठ के अंत में अनादि सिद्ध मंत्र लिखा है।[३]

(४) प्रतिष्ठातिलक—यह वीर सं. २४५१ में सोलापुर से प्रकाशित है इसमें भी बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ है। साहु में 'हु' ह्रस्व है। लोगुत्तमा पाठ है।[४]

(५) ज्ञानार्णव—इस प्राचीन ग्रंथ में भी बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ है। यह विक्रम सम्वत् १९६३ से लेकर कई संस्करणों में वि. सं. २०५४ तक में प्रकाशित है। इसमें 'साहु' में 'हु' सर्वत्र ह्रस्व है। 'लोगुत्तमा' पाठ है।[५]

ज्ञानार्णव में चत्तारिमंगल के बारे में एक श्लोक में लिखा है–

मङ्गल शरणोत्तमपद निकुरम्बं यस्तु संयमी स्मरति।
अविकलमेकाग्रधिया स चापवर्गश्रियं श्रयति।।५७।।[६]

अर्थ—जो संयमी मुनि एकाग्र बुद्धि से मंगल, शरण, उत्तम इन पदों के समूह का स्मरण करता है वह मोक्षलक्ष्मी का आश्रय करता है। वह मंगलकारक उत्तम पदों का समूह चत्तारिमंगल पाठ है।

सभी प्राचीन ग्रंथों में बिना विभक्ति का ही पाठ है पुनः यह संशोधित पाठ क्यों पढ़ा जाता है ? क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

---

१. प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय-३ पृ. ८१। २. प्रतिष्ठासार संग्रह-पृ. ५। ३. प्रतिष्ठापाठ पृ. ८१। ४. प्रतिष्ठातिलक पृ. ४०। ५-६. ज्ञानार्णव–पृ. ३०९, ३०८।

मैंने पं. सुमेरचंद दिवाकर, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रो. मोतीलाल कोठारी, फल्टन आदि अनेक विद्वानों से चर्चा की थी। ये विद्वान भी प्राचीन पाठ के समर्थक थे। एक बार पं. पन्नालाल जी सोनी व्यावर वालों ने कहा था कि जितने भी प्राचीन यंत्र हैं व प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ हैं, सभी में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही मिलता है अतः ये ही प्रमाणीक हैं। यह विभक्ति सहित अर्वाचीन पाठ श्वेताम्बर परम्परा से आया है ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(2) अशरण भावना

हुल्लि बायलि हा हुल्लेय परियलि नरळुव भव काननदल्लि।
कलिगळ काणेनु कालन तडेयलु भयवे भय जीवनदल्लि।।
तायियो तंदेयो बंधुवो बळगवो येल्लरु यमना कैयल्लि।
कायुवुदोंदे श्री जिनराजन स्मरणेयु संतत शरणिल्लि।।२।।

इस तीन लोकरूपी वन में जैसे व्याघ्र हरिण को पकड़ ले तो उसकी दाढ़ के नीचे गए हुए उस हरिण को कोई भी शरण नहीं है। उसी प्रकार हे जीव! मृत्यु के समय तुम्हारी रक्षा करने वाला भला कौन बलवान है ? माता-पिता, बन्धु, राजा और इन्द्र ये सभी तो यमराज के मुख का ग्रास बन रहे हैं पुनः ये तुम्हारी क्या रक्षा करेंगे ? हाँ, इस जगत में रक्षक वे ही हैं कि जिन्होंने यमराज को जीत लिया है इसलिए मृत्यु के विजेता ऐसे देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव की ही शरण लेवो।

(3) संसार भावना

मूजगदलि चिरमिथ्या मायेगे सिलुकुत तिरुगुतलिरुतिहेनु।
आ जिनदेवन काणदे भ्रमेयलि कालवनंतव कळेदिहेनु।।
ई जगदलि बरि दुःखवदल्लदे शाश्वत शान्तयु बित्तिल्ला।
भज भव्यात्मने भवहरदेवने हुट्टु सावुगळु मन्तिल्ला।।

इस तीन जगत में चिरकाल से मिथ्यात्व और मायाचार से यह जीव भ्रमण कर रहा है। श्री जिनेन्द्रदेव के धर्म को नहीं प्राप्त कर ही इसने अनंतकाल बिता दिया है। इस जगत में केवल दुःख ही दुःख है, शाश्वत शांति नहीं है। इसलिए हे भव्यजीव! तुम भव से रहित ऐसे जिनेन्द्रदेव का आश्रय लेवो कि जिससे पुनः तुम्हें इस संसार में जन्म-मरण ही न करना पड़े।

इस प्रकार संसार भावना के बार-बार चिंतवन करने से संसार से भय उत्पन्न होता है तब मोक्ष प्राप्ति के उपाय में प्रवृत्ति होती है।

(3) गाथाएँ या सूत्र अपरिवर्तनीय हैं

कोई-कोई गाथाएँ श्री गौतम स्वामी आदि महान् गणधर देव व आचार्यों के मुखकमल से निर्गत हैं उनकी विभक्ति आदि का संशोधन नहीं करना चाहिये। जैसे कि–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

यह श्री गौतमस्वामी के मुख से निर्गत गाथासूत्र आज बदलकर ऐसा कर रहे हैं कि–"देवा वि तं णमंस्संति[१] यह अनुचित है क्योंकि टीकाकार श्रीप्रभाचंद्राचार्य तक यह गाथा ऐसी ही चली आ रही थी उन्होंने इसकी टीका इस प्रकार की है यथा—

"इदानीं धर्मादीनां मलगालनादिहेतुतया परममंगलत्वं प्ररूपयन्नाह। **धम्मो** इत्यादि। धर्म उक्तलक्षणः। **मंगलं।** मलं पापं गालयति विध्वंसयति वा मंगलम्। मंगं वा परमसुखं लात्यादत्त इति मंगलम्। **उक्किट्ठं।** उत्कृष्टमनुपचरितं परमम्। न केवलं धर्म एव मंगलमपि **तु अहिंसा संजमो तवो** अहिंसा संयमस्तपश्च। न केवलं मलगालनहेतुरेवायमपि तु पूजादिहेतुरपि। यतः **देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो** देवा अपि तस्य प्रणमंति यस्य धर्मे सदा मनः।।[२]"

ऐसे ही पाक्षिक और अष्टमी के प्रतिक्रमण में दण्डक सूत्रों का ऐसा क्रम है। यह दण्डकसूत्र श्री गौतमस्वामी द्वारा विरचित हैं। इन्हें बदल देना अनुचित है। इन दण्डक सूत्रों का क्रम टीकाकारों तक इसी प्रकार रहा है और ऐसे ही क्रम रखकर उन्होंने टीका की है। यथा[३]—

"णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि अइक्कमो वदिक्कम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।"

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

नव ब्रह्मचर्य गुप्ती चउ संज्ञा चार हि आस्रव कारण हैं।
दो आर्तरौद्र संक्लेश भाव त्रय अप्रशस्तसंक्लेश कहें।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चरित्र चउ उपसर्गा।
चारित्र पाँच छह जीवकाय छह आवश्यक किरिया उक्ता।।
भय सात आठ शुद्धी दश विध हैं श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान।
दश मुंडन बारह संयम बाइस परिषह भावना बीस पांच।।

---

१. श्रमणचर्या-पृ. १६४। २. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी-पृ. ८०। ३. मुनिचर्या पृ. १७०-१७१।

पच्चीस क्रिया अठरह हजार हैं शील व गुण चौरासि लाख।
अठबीस मूलगुण बहु उत्तरगुण इन सबमें कीना विघात।।
इन आठ दिनों में अष्टमि में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अरू।
जो अनाचार आभोग अनाभोग उन सबका प्रतिक्रमण करूं।।
प्रतिक्रमण सुकरते हुए मेरा सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीरमरण जिससे नहिं होवे पुनः मरण।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मम जिनगुणसंपति होवे।।

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने भी यही क्रम लिया है[१]–

णवसु इत्यादि। **णवसु बंभचेरगुत्तीसु।।** नवप्रकारासु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु। कथं पुनस्तासां नवप्रकारतेति चेत्, उच्यते–तिर्यङ्मनुष्यदेवस्त्रीणां प्रत्येकं मनोवचनकायैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। अथवा स्त्रीसामान्यस्य मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतविशेषैरसेवनं नवविधं ब्रह्मचर्यं। तस्य च गुप्तयो रक्षणानि पालनानि नवप्रकाराणि भवंतीति नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः। **चउसु सण्णासु**।। चतसृषु संज्ञास्वाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणासु।। **चउसु पच्चएसु**।। चतुर्षु प्रत्ययेषु कर्मबंधकारणेषु मिथ्यादर्शनाविरतिकषाययोगलक्षणेषु। प्रमादस्य पंचमस्य तत्कारणस्य सद्भावात्कथं चत्वारः प्रत्यया इति नाशंकनीयं, तस्यविरतावंतर्भावात्।। **दोसु अट्टरुद्दसंकिलेस–परिणामेसु**।। द्वयोरार्तरौद्रलक्षणसंश्लेष–परिणामयोः।। **तिसु अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामेसु**।। त्रिषु मायामिथ्यानिदानस्वरूपेष्वप्रशस्तेषु पापोपार्जनहेतुभूतेषु संक्लेशपरिणामेषु।। **मिच्छणाणमिच्छ–दंसणमिच्छचरित्तेसु।।** मिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शनमिथ्याचारित्रेषु। अथवा मिथ्यादर्शन–ज्ञानचारित्राण्येव संक्लेशपरिणामाः, संक्लिष्टात्मनामेव तत्प्रादुर्भावात्।। **चउसु उवसग्गेसु**।। चतुर्षूपसर्गेषु देवमनुष्यतिर्यगचेतन–कृतोपसर्गलक्षणेषु।। **पंचसु चरित्तेसु**।। सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातलक्षणेषु।। **छसु आवासएसु**।। प्रागेव व्याख्यातरूपेषु।। **सत्तसु भएसु**।। "इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणा कस्स।। भय–"मित्येतल्लक्षणलक्षितेषु।। **अट्ठसु सुद्धीसु**।। "मनोवाक्कायभैक्ष्येर्यासूत्सर्गे शयनासने विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतं।।" इत्येवं रूपासु।। **दससु समणधम्मेसु**।। दशप्रकारेषु श्रमणधर्मेषु। श्रमणानां मुनीनां धर्माः श्रमणधर्मास्तेषूत्तम–क्षमामार्दवार्जवसत्यशौच–संयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणेषु।। **दससु धम्मज्झाणेसु**।। दशप्रकारेषु धर्म्यध्यानेष्वपायविचयोपायविचयविपाकविचयविराग–विचयलोकविचयभवविचयजीवविचयाज्ञाविचयसंस्थानविचयसंसारविचयलक्षणेषु। विचयो हि परीक्षा। सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो, दूरमेवापेता इति चिंतनमपायविचयः। अथवा मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो, जीवस्य कथमपायः स्यादितिचिंतनमपायविचयः।।१।। उपायविचयो दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवाः सम्यग्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखा इति चिंतनं।।२।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकाल भवभावप्रत्ययं फलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः।।३।। संसारदेहविषयेषु दुःखहेतुत्वानित्यत्वचिंतनं विरागविचयः।।४।। ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागेनानाद्यनिधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचिंतनं लोकविचयः।।५।। चतुर्गतिनारकतिर्यङ्मानुषदेवनिकायभवचिंतनं भवविचयः।।६।। संति

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १८६ से १९४ तक।

जीवा उपयोगस्वभावा अनादिनिधना मुक्तेतररूपा इत्यादि जीवस्वरूपचिंतनं जीवविचयः।।७।। सर्वज्ञागमं प्रमाणीकृत्यात्यंतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचयः। सर्वज्ञज्ञातार्थसमर्थनं वा हेतुसामर्थ्यात्।।८।। अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्रमृदंगाद्याकारचिंतनं संस्थानविचयः।।९। स्वोपात्तकर्मविपाकवशादात्मनो भवांतरावाप्तिः संसारः। तच्चिंतनं संसारविचयः।।१०।। **दससु मुंडेसु**।। मुंडनं निरोधनं मुंडः। स दशप्रकारो भवति–पंच वि इंदियमुंडा वचिमुंडा हत्थपायतणुमुंडा। मणमुंडेण य सहिया दसमुंडा वण्णिदा समये।।" इति वचनात्।। **बारसेसु संजमेसु**।। द्वादशप्रकारो हि संयमः षड्विध इंद्रियसंयमः षड्विधः प्राणिसंयमश्चेति। तत्रेंद्रियसंयमः षड्विधः, पंचानामिंद्रियाणां षष्ठस्य च मनसः संयमनात्स्वविषये गच्छतामेतेषां नियंत्रणात्। प्राणिसंयमश्च षड्विधः पंचानां स्थावराणां त्रसानां चाविराधनात्।। **बावीसाए परीसहेसु**।। द्वाविंशतिसंख्येषु परीषहेषु। कर्मक्षयार्थं ये परिषह्यंते ते परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमल-सत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनलक्षणाः। तेषु।। **पणवीसाए भावनासु**।। पंचविंशतिसंख्यासु भावनासु। व्रतानां स्थैर्यार्थं हि भाव्यंत इति भावनाः पंचविंशतिः। तथाहि—हिंसाविरतिव्रतस्थैर्यार्थं तावद्वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकितपानभोजनानि पंच, तथाऽनृतविरतिव्रत-स्थैर्यार्थं क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच, स्तेयविरतिव्रतस्थैर्यार्थं शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच, अब्रह्मचर्यविरतिव्रतस्थैर्यार्थं स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच, परिग्रहविरतिस्थैर्यार्थं मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंचेति।। **पणवीसाए किरियासु**।। पंचविंशतिसंख्यासु क्रियासु। क्रियंत इति क्रियाः शुभाशुभकर्मादानहेतवो व्यापाराः पंचविंशतिः। तथाहि–चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका कर्मप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया (प्रायोगिकी क्रिया) संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया। ईर्यापथनिमित्ता ईर्यापथक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकी क्रिया। दुःखोत्पत्तितंत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिंद्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। एताः पंच क्रियाः।। रागाद्रींकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्प्रष्टव्यसचेतनानुबंधः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादना-त्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपशुषंढसंपातिदेशेंऽतर्मलोत्सर्गकरणं समंतानुपातक्रिया। अप्रमृष्टादृष्ट-भूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। एताः पंच क्रियाः।। यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तादानक्रिया। पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनं विदारणक्रिया। यथाक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथाप्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकर्तव्यता-नादरोऽनाकांक्षक्रिया। एताः पंचक्रियाः।। छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन चारंभे क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारंभक्रिया। परिग्रहाविनाशार्थं पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचना मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा 'साधु करोषीति' सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एताः पंचविंशतिक्रियाः।। **अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसदसहस्सेसु।।** अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिगुणशतसहस्राणि लक्षाः परमागमे प्रतिपादितस्वरूपाः। तेषु।। **मूलगुणेसु**।।

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १८६ से १९४ तक। ४. श्रमणचर्या–पृ. २०१–२०२।

पंचमहाव्रतपंचसमितिपंचेंद्रियनिरोधादिलक्षणेष्वष्टाविंशतिसंख्येषु।। **उत्तरगुणेसु।।** वृक्षमूलातापनाद्यनेकप्रकारेष्वेतेषु।। प्राक्प्रतिपादितस्वरूपेषु नवब्रह्मचर्यगुप्त्यादिषूत्तरगुणपर्यंतेषु यः कश्चिदतिक्रमादिदोष आष्टमिकाद्यनुष्ठाने जातस्तं प्रतिक्रमातीति संबंधः। किंलक्षणोऽयमतिक्रमादिरिति चेत्, उच्चते–"अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः। तथातिचारः करणालसत्वं भंगो ह्यनाचार इह व्रतानां"।।१।। अथवा।। **अदिक्कमो**।। कुतश्चिद्–व्यासंगाच्चित्तसंक्लेशाद्वाऽऽगमोक्तानुष्ठानकालादधिककालआवश्यकादिक्रियाकरणमतिक्रमः। **वदिक्कमो**।। विगतोऽतिक्रमो यस्मिन्नसौ व्यतिक्रमो विषयव्यासंगादिनाऽऽगमोक्तक्रियाकालाद्धीनकाले क्रियाकरणं।। **अइचारो**।। आवश्यकादिक्रियाकरणालसत्वं।। **अणाचारो**।। व्रतसमित्यादीनामनाचरणं खण्डनं वा।। **आभोगो**।। कापोतलेश्यावशात्पूजामहत्त्वाभिलाषेणातिप्रकटानुष्ठानकरणं।। **अणाभोगो**।। लज्जादिवशाल्लोकानामप्रकटानुष्ठानकरणं। अयमतिक्रमादिदोषो नवब्रह्मचर्यादिगुप्त्यादिगोचरः क्व जात इत्याह–**अट्ठमियम्हि** इत्यादि।। अष्टम्यामष्टदिनावच्छिन्ने काले भवमाष्टमिकनमनुष्ठानं। तस्मिन्।। पक्खियम्हि।। पक्षे भवं पाक्षिकमनुष्ठानं। तस्मिन्।। **चाउम्मासियम्हि**।। चतुर्षु मासेषु भवं चातुर्मासिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। **सांवच्छरियम्हि**।। संवत्सरे भवं सांवत्सरिकमनुष्ठानं। तस्मिन्। एतस्मिन्नाष्टमिकाद्यनुष्ठाने षडावश्यकादिगोचरोऽति–क्रमादिर्यो दोषो जातस्तं प्रतिक्रमाम्युक्तालोचनाद्वारेण निराकरोमि।। **मए पडिक्कंतं**।। अतिक्रमादिदूषणं मया प्रतिक्रांतं शोधितं यदा भवति तदा।। **सम्मत्तमरणं**।। सम्यक्त्वयुक्तस्यापरित्यक्तसम्यक्त्वस्य मरणं।। **होउ मज्झं**।। भवतु मम।। **पंडियमरणं**।। भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीपादोपयानमरणभेदात्त्रिविधं पंडितमरणं मम भवतु।। **वीरियमरणं**।। वीर्ययुक्त–स्याल्कीबस्य मरणं मम भवतु।। **दुक्खक्खओ**।। दुःखानां चातुर्गतिकानां क्षयो विनाशः। **कम्मक्खओ**।। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां क्षयः प्रलयो भवतु।। **बोहिलाहो।।** बोधेः रत्नत्रयस्य लाभो मम भवतु।। **सुगइगमणं**।। शोभनायां गतौ मोक्षगतौ गमनं मम भवतु।। **जिणगुणसंपत्ति**।। जिनस्य प्रक्षीणाशेषकर्मणो भगवतो गुणा अनंतज्ञानादयः। तेषां संप्राप्तिर्मम भवतु।।

यन्नो कैश्चिदपि प्रसन्नवचनैर्निःशेषशुद्धिप्रदं। व्याख्यातं प्रवरं प्रतिक्रमणसद्ग्रंथत्रयं धीमतां।।
तद्येन प्रकटीकृतं भवहरं शब्दार्थतो निर्मलं।स श्रीमान्निखिलोपकारनिरतो जीयात्प्रभेंदुर्जिनः।।

नव प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्ति में, चार संज्ञाओं में कर्मबंध के कारण चार मिथ्यात्वादि प्रत्ययों में दो आर्त्तरौद्रसंक्लेशपरिणामों में माया मिथ्या निदानरूप तीन अप्रशम परिणामों में चार उपसर्गों में पाँच सामायिक चारित्रों में, छह जीव निकायों में, छह आवश्यकों में, सात भयों में, आठ शुद्धियों में नव ब्रह्मचर्य गुप्तियों में, दश श्रमण धर्मों में, दश धर्मध्यानों में, दश मुंडों में, बारह संयमों में, बाइस परिषहों में, पच्चीस भावनाओं में, पच्चीस क्रियाओं में, अठारह हजार शीलों में, चौरासी लाख गुणों में, मूलगुणों में और उत्तर गुणों में इत्यादि विधि निषेध स्वरूप यत्याचारों में आष्टमिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक अनुष्ठानों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग और अनाभोग ये जो दोष हुआ है, उसका प्रतिक्रमण–निराकरण करता हूँ। मेरे दोष दूर किये उसको मेरा सम्यक्त्वमरण, समाधिमरण, पंडितमरण, वीर्यमरण, दुःखक्षय, कर्मक्षय, बोधिलाभ, सुगतिगमन और जिनेन्द्रगुणों की प्राप्ति हो।[१]

---

१. यतिप्रतिक्रमण, पृ. ९६।

अब श्रमणचर्या पुस्तक में परिवर्तित पाठ देखिए—

दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्प-सत्थसंकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, णवसु बंभचेर-गुत्तीसु, दससु समण-धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मंडेसु, दसविहेसु, भत्तिसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारह-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु अट्ठमियम्मि अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो जादो तं पडिक्कमामि। तस्स मए पडिक्कंतं, मे सम्मत्त-मरणं, पंडिय-मरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं।[१]

यहाँ तात्पर्य यही है कि परिवर्तित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(12) धर्म भावना

धर्मवे सिरियदु धर्मवे गुरियदु निजजीवनदा कृतियेल्ला।
मर्मवनरियलु सुरतरु चिन्तामणियिदकावुदु समनिल्ला।।
अडिगडियात्मगे सारुतलिरुवरु गुरुगळु संतत शान्तियलि।
कुडि कुडि धर्मामृतवनु मरेयदे केडदिरु तिरुगुत भ्रांतियलि।।

इस जीवन में धर्म ही श्री है और धर्म ही श्रेष्ठ है, यह धर्म ही कल्पवृक्ष है, चिंतामणि है, इसके समान और कुछ भी नहीं है। हे आत्मन्! तुम यदि सतत शांति चाहते हो तो सर्व भ्रांति को छोड़कर इस धर्मरूपी अमृत का पान करो, पान करो, यही अजर अमर पद को देने वाला है।

यह धर्म संसार में सर्व मनोरथ को पूर्ण कर अनेक अभ्युदयों को प्रदान करता है पुनः सर्व कर्मों का नाश कर मोक्षसुख देने वाला है। धर्म के बिना इस जगत में कुछ भी सार नहीं है, ऐसा बार-बार भाते रहने से यह धर्म आत्मा को परमात्मा बना देता है।

---

१. श्रमणचर्या पृ. २०१-२०२।

(4) गाथाओं में पाठ भेद

समयसार ग्रंथ में कहीं-कहीं गाथा में पाठ भेद—अन्तर होने से टीकाकार आचार्यों ने दोनों पाठ रखकर दोनों के अर्थ कर दिए हैं। किसी एक पाठ को प्रमाण और दूसरे को अप्रमाण नहीं माना है। उदाहरण में देखिए–

श्री अमृतचंद्रसूरि की टीका में गाथा यह है—

(१) वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं[१]।।१।।

अन्वयार्थ—मैं (**धुवां अचलां अनुपमां गतिं प्राप्तान्**) ध्रुव, अचल और अनुपम गति को प्राप्त हुए **(सर्वसिद्धान् वंदित्वा)** सर्वसिद्धों की वंदना करके **(अहो)** हे भव्यों! **(श्रुतकेवलिभणितं)** श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित **(इदं समयप्राभृतं वक्ष्यामि)** इस समयसार नामक प्राभृत ग्रंथ को कहूँगा।।१।।

श्री जयसेनाचार्य की टीका में गाथा यह है—

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवममलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवली भणिदं।।

अन्वयार्थ—(धुवममलमणोवमं गदिं पत्ते) ध्रुव, अमल-कर्ममल रहित और अनुपम गति को प्राप्त (सव्वसिद्धे वंदित्तु) सर्व सिद्धों की वंदना करके (अहो) हे भव्यों! (सुदकेवलीभणिदुं) श्रुत केवलियों द्वारा कथित (समय पाहुडमिणं वोच्छामि) इस समय प्राभृत नामक ग्रंथ को कहूँगा।

तात्पर्यवृत्तिः—'**वंदित्तु**' इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते। **वंदित्तु** निश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभावरूपेण निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन भावनमस्कारेण, व्यवहारेण तु वचनात्मक-द्रव्यनमस्कारेण वंदित्वा। कान्। **सव्वसिद्धे** स्वात्मोपलब्धिसिद्धिलक्षणसर्वसिद्धान्। किंविशिष्टान्। पत्ते प्राप्तान्। कां ? **गदिं** सिद्धगतिं सिद्धपरिणतिं। कथंभूतां। **धुवं** टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवामविनश्वरां। "**अमलं भावकर्मद्रव्यकर्म-नोकर्ममलरहितत्वेन शुद्धस्वभावसहितत्वेन च निर्मलां। अथवा अचलं इति पाठांतरे द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारभ्रमण-रहितत्वेन स्वस्वरूपनिश्चलत्वेन च चलनरहितामचलां।**"

तात्पर्यवृत्ति—अब 'वंदित्तु' इत्यादि पदच्छेदरूप से व्याख्यान किया जाता है। निश्चयनय से अपने में ही आराध्य-आराधक भावरूप जो निर्विकल्प समाधि है, उस लक्षणरूप भाव नमस्कार के द्वारा और व्यवहारनय से वचनरूप द्रव्य नमस्कार के द्वारा वंदना करके। किनकी वंदना करके? स्वात्मा की उपलब्धिरूप जो सिद्धि है उस लक्षण वाले सर्व सिद्धों की वंदना करके। वे सिद्ध कैसे हैं ? जो सिद्धगति को—सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। वह सिद्ध गति कैसी है ? टांकी से उकेरे हुए के समान ज्ञायक एकस्वभावरूप से वह ध्रुव अर्थात् अविनश्वर है। भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्मरूप मल से रहित होने से तथा शुद्ध स्वभाव से सहित होने से वह अमल-निर्मल है। अथवा 'अचलं' ऐसा भिन्न पाठ मानने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच प्रकार के संसार के भ्रमण से रहित होने से और स्वस्वरूप में निश्चल होने से वह गति चलन रहित अचल है। संपूर्ण उपमाओं से रहित होने से निरुपम है और स्वभाव से सहित होने से अनुपम है। ऐसी सिद्ध अवस्था को जो प्राप्त हुए हैं।

विशेष—यहाँ श्री जयसेनाचार्य ने पहले स्वयं को प्राप्त गाथा के अनुसार 'अमल' पद का अर्थ किया है। पुनः उनके सामने भी पाठांतर था अतः 'पाठांतरे' कहकर 'अचल' पद का भी अर्थ कर दिया है। ऐसे ही पूरे समयसार में अनेक गाथाओं में दोनों आचार्यों की टीका में पाठ भेद हैं। उन्हें दोनों टीका सहित "ज्ञानज्योति" हिन्दी टीका जो मेरे द्वारा की गई है, उसमें देखना चाहिए।

---

१. समयसार, पूर्वार्ध, पृ. ८ से १४। गाथा-१ श्री जयसेनाचार्य की टीका के अंश।

(5) पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थ प्रमाण हैं

आगम में जहां दो मत आये हैं वहां टीकाकारों ने दोनों को प्रमाण मानने को कहा है किन्तु एक स्थान पर स्वयं धवला टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है कि 'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो" गौतमस्वामी से पूछना चाहिये चूँकि वे मनःपर्ययज्ञान के धारी, सप्त ऋद्धियों से समन्वित भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर थे व साक्षात् प्रभु के समवसरण में ३० वर्ष तक रहे थे। द्वादशांग को अंतर्मुहूर्त में ग्रंथित करने वाले थे।

आज वर्तमान में उन्हीं की वाणी स्वरूप पाक्षिक, दैवसिक आदि प्रतिक्रमण सूत्रों में परिवर्तन, संशोधन करते हुये देखा जा रहा है यह तो एक महान आश्चर्य का विषय है।

पूर्वाचार्यों की पापभीरुता

ग्रंथों को पढ़ाते समय विद्वान् के मुख से अथवा उपदेश करते समय वक्ता के मुख से पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा का निर्झर प्रवाहित हो जाना चाहिए। जैसे कि आचार्य विद्यानंदि, आचार्य वीरसेन और आचार्य वसुनंदि आदि के शब्दों में दिखता है। यथा—

साम्प्रतमन्त्यस्य गुणस्य स्वरूपनिरूपणार्थमर्हन्मुखोद्गतार्थं गणधरदेवग्रथितशब्दसन्दर्भं प्रवाहरूपतयानिधनतामापन्नमशेषदोषव्यतिरिक्तत्वादकलङ्कमुत्तरसूत्रं पुष्पदन्तभट्टारकः प्राह-

"अब पुष्पदंत भट्टारक अंतिम गुणस्थान के प्रतिपादन हेतु, अर्थरूप से अर्हंत परमेष्ठी के मुख से निकले हुये, गणधर देव के द्वारा गूँथे गये शब्द रचना वाले, प्रवाहरूप से कभी भी नाश को नहीं प्राप्त होने वाले और सम्पूर्ण दोषों से रहित होने से निर्दोष आगे के सूत्र कहते हैं।"[१]

यहाँ श्री वीरसेनस्वामी को श्री पुष्पदंत आचार्य के प्रति कितनी श्रद्धा है और उनके वचनों को वे साक्षात् भगवान की वाणीरूप ही मान रहे हैं। यह स्पष्ट दिख रहा है। आगे और देखिये—

नाप्यार्षसन्ततेर्विच्छेदः, विगतदोषावरणार्हद्व्याख्यातार्थस्यार्षस्य चतुरमलबुद्ध्यतिशयोपेतनिर्दोषगणभृदवधारितस्य ज्ञानविज्ञानसम्पन्नगुरुपर्वक्रमेणायातस्याविनष्टप्राक्तनवाच्यवाचकभावस्य विगतदोषावरणनिष्प्रतिपक्षसत्यस्वभावपुरुषव्याख्यातत्वेन श्रद्धाप्यमानस्योपलम्भात्। अप्रमाणमिदानीन्तन आगमः, आरातीयपुरुषव्याख्यातार्थत्वादिति चेन्न, ऐदंयुगीनज्ञानविज्ञानसम्पन्नतया प्राप्तप्रामाण्यैराचार्यैर्व्याख्यातार्थत्वात्। कथं छद्मस्थानां सत्यवादित्वमिति चेन्न, यथाश्रुतव्याख्यातृणां तदविरोधात्। प्रमाणीभूतगुरुपर्वक्रमेणायातोऽयमर्थ इति कथमवसीयत इति चेन्न, दृष्टविषये सर्वत्राविसंवादात्, अदृष्टविषयेऽप्यविसंवादिनागमभागेनैकत्वे सति सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वात, ऐदंयुगीनज्ञानविज्ञानसम्पन्नभूयसामाचार्याणामुपदेशाद्वा तदवगतेः।[२]

"हमारे यहाँ आर्षपरंपरा का विच्छेद भी नहीं है क्योंकि जिसका दोष—आवरण रहित अरहंत देव ने अर्थरूप से व्याख्यान किया है जिसको चार ज्ञानधारी, निर्दोष गणधर देव ने धारण किया है, जो ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न गुरु परम्परा से चला आ रहा है, जिसका पहले का वाच्य-वाचक भाव अभी तक नष्ट नहीं हुआ है और जो दोषावरण

---

१. धवला पु. १, पृ.१९३। २. धवला पु. १. पृ. १९७, १९८।

से तथा निष्प्रतिपक्ष सत्यस्वभाव वाले पुरुष के द्वारा व्याख्यात होने से श्रद्धा के योग्य है ऐसे आगम की आज भी उपलब्धि हो रही है।"

शंका—आधुनिक आगम अप्रमाण है क्योंकि अर्वाचीन पुरुषों ने इसका अर्थ किया है ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान से सहित होने से प्रमाणता को प्राप्त इस युग के आचार्यों द्वारा इसके अर्थ का व्याख्यान किया गया है इसलिये आधुनिक आगम भी प्रमाण है।

शंका—छद्मस्थ सत्यवादी कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि श्रुत के अनुसार व्याख्याता आचार्यों को प्रमाण मानने में कोई विरोध नहीं है।

शंका—आगम का यह अर्थ प्रामाणिक गुरु परम्परा के क्रम से आया है यह कैसे निश्चय किया जाये ?

समाधान—"नहीं, क्योंकि....ज्ञान-विज्ञान से युक्त इस युग के अनेक आचार्यों के उपदेश से उसकी प्रमाणता जाननी चाहिए।....." और भी देखिये—

कषाय प्राभृतकार पहले आठ कषाय का क्षय, पीछे सोलह प्रकृति का क्षय मानते हैं किन्तु सत्कर्मप्राभृतकार (षट्खंडागमकार) पहले सोलह का नाश मानकर आठ कषाय का नाश मानते हैं। इस पर चर्चा चली कि दोनों में से कोई एक ही वाक्य सूत्ररूप प्रमाणीक होना चाहिए। इस पर आचार्य वीरसेन दोनों आगम को सूत्र कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि—

तित्थयर-कहियत्थाणं गणहरदेव-कय-गंथरयणाणं बारहंगाणं आइरिय-परंपराए णिरंतरमागयाणं जुग-सहावेण बुद्धीसु ओहट्टंतीसु भायणाभावेण पुणो ओहट्टिय आगयाणं पुणो सुट्ठु-बुद्धीणं खयं दट्ठूण तित्थ-वोच्छेदभएण वज्ज-भीरूहि गिहिदत्थेहि आइरिएहि पोत्थएसु चडावियाणं असुत्तत्तण-विरोहादो। जदि एवं, तो एयाणं पि वयणाणं तदवयवत्तादो सुत्तत्तणं पावदि त्ति चे ? भवदु दोण्हं मज्झे एक्कस्स सुत्तत्तणं, ण दोण्हं पि, परोप्पर-विरोहादो। उस्सुत्तं लिहंता आइरिया कथं वज्ज-भीरुणो इदि चे ? ण एस दोसो, दोण्हं मंज्झे एक्कस्सेव संगहे कीरमाणे वज्जभीरुत्तं फिट्टदि त्ति ? दोण्हं पि संगहं करेंताणमाइरियाणं वज्ज-भीरुत्ताविणासादो।[१]

"जिनका अर्थरूप से तीर्थंकरों ने प्रतिपादन किया है और गणधरदेव ने जिनकी ग्रंथ रचना की ऐसे द्वादशांग आचार्य परम्परा से निरंतर चले आ रहे हैं। परन्तु काल के प्रभाव से उत्तरोत्तर बुद्धि के क्षीण होने पर और उन अंगों के धारण करने वाले योग्य पात्र के अभाव में वे उत्तरोत्तर क्षीण होते हुए आ रहे हैं। इसलिये जिन आचार्यों ने आगे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुषों का अभाव देखा **जो अत्यन्त पापभीरु थे और जिन्होंने गुरु परम्परा से श्रुतार्थ ग्रहण किया था उन आचार्यों ने तीर्थ विच्छेद के भय से उस समय अवशिष्ट रहे हुए अंग संबंधी अर्थ को पोथियों में लिपिबद्ध किया, अतएव उनमें असूत्रपना नहीं आ सकता।**

शंका—यदि ऐसा है तो इन दोनों ही वचनों को द्वादशांग का अवयव होने से सूत्रपना प्राप्त हो जायेगा ?

समाधान—दोनों में कोई एक ही सूत्र हो सकता है, दोनों नहीं, क्योंकि दोनों में परस्पर विरोध है।

शंका—पुनः उत्सूत्र लिखने वाले आचार्य पापभीरु कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दोनों प्रकार के वचनों में से किसी एक ही के वचन संग्रह

---

१. धवला पु.१, पृ. २२२, २२३।

करने पर पापभीरुता निकल जाती है किन्तु दोनों प्रकार के वचनों का संग्रह करने वाले आचार्यों के पापभीरुता नष्ट नहीं होती है अर्थात् बनी रहती है।

पुनः प्रश्न होता है कि—**''दोण्ह वयणाणं मज्झे कं वयणं सच्चमिदि चे ? केवली सुदकेवली वा जाणादि ण अण्णो तहा णिण्णयाभावादो। वट्टमाण-कालाइरिएहि वज्जभीरुहि दोण्हं पि संगहो कायव्वो अण्णहा वज्जभीरुत्त-विणासादो त्ति।''**[१]

शंका—दोनों प्रकार के वचनों में से किसी वचन को सत्य माना जाये ?

समाधान—इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि, इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है इसलिये पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिये अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जायेगा।''

ऐसे ही अन्यत्र भी दो मत आ जाने पर प्रश्नोत्तरमाला चलती है। पुनः शिष्य कहता है कि—

दोण्हं संगहं करेंतो संसयमिच्छाइट्ठी होदि त्ति, तण्ण, सुत्तुद्दिट्ठमेव अत्थि त्ति सद्दहंतस्स संदेहभावादो।[२]

शंका—दोनों वचनों का संग्रह करने वाला संशय मिथ्यादृष्टि हो जायेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संग्रह करने वाले के 'यह सूत्र कथित ही है' इस प्रकार का श्रद्धान पाया जाता है, अतएव उसके संदेह नहीं हो सकता है।''

आगे शिष्य प्रश्न करता है कि—

कथमार्षस्य प्रामाण्यमिति चेत्स्वाभाव्यात्प्रत्यक्षस्येव।[३]

प्रश्न—आर्ष को प्रमाण कैसे माना जाये ?

उत्तर—जैसे प्रत्यक्ष स्वभावतः प्रमाण है वैसे ही आर्ष भी स्वभावतः प्रमाण है''।

आचार्य वीरसेन स्वामी तो स्पष्ट कहते हैं कि—**आगमो हि णाम केवलणाणपुस्सदो.....।**''आगम केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, अतः आगम में अनुमान का प्रयोग नहीं हो सकता।''

जहाँ कहीं भी दो मत के आने पर शंका उठी है वहीं पर धवलाकार ने ऐसा समाधान दिया है। यथा—

तदो तेहि सुत्तेहि एदेसिं सुत्ताणं विरोहो होदि त्ति भणिदे जदि एवं तो उवदेसं लद्धूण इदं सुत्तं इदं चासुत्तमिदि आगमणिउणा भणंतु। ण च अम्हे एत्थ वोत्तुं समत्था, अलद्धोवदेसत्तादो।[४]

''यह सूत्र है, यह सूत्र नहीं है' ऐसा आगमनिपुणजन कह सकते हैं किन्तु हम यहाँ कहने के लिये समर्थ नहीं हैं, क्योंकि हमें वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है।''

इससे अधिक और पापभीरुता क्या होगी, कहिये ? जबकि वीरसेन स्वामी धवला, जयधवला टीकाकर्ता भी अपने को 'आगमनिपुण' नहीं मानते हैं।

आगे और देखिये—

बादरविगोदपदिट्ठिदअपदिट्ठिदाणमेत्थ सुत्ते वणप्फदिसण्णाकिण्ण णिट्ठिट्ठा गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।[५]

शंका—बादर निगोद जीवों से प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं दी ?

---

१. धवला पु. १, पृ. २६४। २. धवला पु. १, पृ. ३१६। ३. धवला पु.६, पृ.१५१। ४. धवला पु.७, पृ. ५०७। ५. धवला पु. ७, पृ. ५४१।

समाधान—'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो।' यहाँ गौतमस्वामी से पूछना चाहिए।''

कषायप्राभृत में भी कहा है कि—

ण च पमाणं पमाणंतरमवेक्खदे, अणवत्थावत्तीदो।[१]

''प्रमाण के लिये प्रमाण नहीं चाहिये और आगम स्वयं प्रमाण है।

मूलाचार में देवियों की आयु के बारे में गाथायें आई हैं। उन दोनों में अंतर है। यथा—

'सौधर्म स्वर्ग में देवियों की उत्कृष्ट आयु ५ पल्य, ईशान में ७, सानत्कुमार में ९, माहेन्द्र में ११, ब्रह्म में १३, ब्रह्मोत्तर में १५, लांतव में १७, कापिष्ठ में १९, शुक्र में २१, महाशुक्र में २३, शतार में २५, सहस्रार में २७, आनत में ३४, प्राणत में ४१, आरण में ४८ और अच्युत में ५५ पल्य है।

दूसरी गाथा में कहते हैं—सौधर्म-ईशान में ५ पल्य, सानत्कुमार युगल में १७, ब्रह्मयुगल में २५, लांतवयुगल में ४५, शुक्रयुगल में ४०, शतारयुगल में ४५, आनतयुगल में ५० और आरण अच्युत में ५५ पल्य है।

इसकी टीका में श्री वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य कहते हैं—

''.....द्वौ अपि उपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशात्, द्वयोर्मध्ये एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र संदेहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति संदेहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।''[२]

दोनों ही उपदेश ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपि यह निश्चित है कि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिये। इस विषय में संशयमिथ्यात्व भी नहीं है क्योंकि 'जो अर्हंतदेव द्वारा प्रणीत है वही सत्य है' इस प्रकार से संशय का अभाव है क्योंकि छद्मस्थों को यह विवेक करना शक्य नहीं है इसलिये मिथ्यात्व के भय से ही दोनों को ग्रहण करना चाहिये।

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में श्री विद्यानंदि महोदय तत्त्वार्थसूत्र को आप्तमूलक सिद्ध कर रहे हैं—

''संप्रदायाव्यवच्छेदाविरोधादधुना नृणाम्।
सद्गोत्राद्युपदेशोऽत्र यद्वत्तद्वद्विचारतः।।६।।
प्रमाणमागमः सूत्रमाप्तमूलत्वसिद्धितः।।''[३]

संप्रदाय—परम्परा के व्यवच्छेद का अविरोध होने से यह सूत्र आगम प्रमाण है क्योंकि यह आप्तमूलक सिद्ध है। जैसे—आजकल मनुष्यों के सद्गोत्र (काश्यप आदि) आदि का उपदेश प्रवाहरूप से पाया जाता है। उसी प्रकार से विचार करने से यह सूत्ररूप आगम पूर्णतया प्रमाणभूत ही है।

कषायप्राभृत ग्रंथ के प्रति श्रद्धा देखिये—

स्वयं जयधवलाकार प्रस्तुत ग्रंथ के गाथा सूत्रों और चूर्णिसूत्रों को किस श्रद्धा और भक्ति से देखते हैं, यह उन्हीं के शब्दों में देखिये। एक स्थान पर शिष्य के द्वारा यह शंका किये जाने पर कि यह कैसे जाना ? इसके उत्तर में श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं—

''एदम्हादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्ढमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदम-लोहज्ज-जंबुसामियादि आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहास-रूवेण परिणमिय अज्जमंखुणागहत्थीहितो

१. जयधवला पु.१, पृ.३३४। २. मूलाचार, पर्याप्त्यधिकार गा.७९, ८०। ३. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मूल, पृ.८।

जयिवसहमुहणयिय चुण्णिसुत्तायारेण परिणददिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे।[१] (जयध.आ.पत्र ३१३)

"विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथा स्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ती के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि तुल्य है ऐसा टीकाकार का कथन है। दूसरी बात यह है कि आचार्य परम्परा की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश दिख रहा है। 'गुणधराचार्य ने आचार्य परम्परा से ज्ञान पाया और गाथारूप से परिणत किया। पुनः आचार्य परम्परा से ही आर्यमंक्षु और नागहस्ती मुनि को उसका ज्ञान मिला। अनंतर उनके चरण सानिध्य में ज्ञान प्राप्तकर यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों की रचना की है।

जयधवलाकार ने तो इन 'कसायपाहुड़' की गाथाओं को '**अणंतत्थगब्भाओ**' अनंत अर्थ गर्भित कहा है।

जहाँ आगम में जो मत आ जाते हैं तो दोनों का भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। देखिए गोम्मटसार जीवकाण्ड में—

नारकतिर्यग्नरसुरगत्युत्पन्नजीवस्य तद्भवप्रथमकाले-प्रथमसमये यथासंख्यं क्रोधमायामानलोभ-कषायाणामुदयः स्यादिति नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धान्तव्याख्यातुर्यतिवृषभाचार्यस्य अभिप्रायमाश्रित्योक्तम्। वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्तकर्तुः भूतबल्याचार्यस्य अभिप्रायेणाऽनियमो ज्ञातव्यः। प्रागुक्तनियमं विना यथासंभवं कषायोदयोऽस्तीत्यर्थः। अपि शब्दः समुच्चयार्थः, ततः कारणादुभयसंप्रदायोऽपि अस्माकं संशयाधिरूढ एवास्ति एकतरावधारणे शक्तिरहितत्वात् अस्मिन् भरतक्षेत्रे केवलिद्वयाभावात् आरातीयाचार्याणामेतत् सिद्धान्तद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावात्। यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धान्तद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति तत्प्रेक्षावान् कः श्रद्दधीत।।२८८।।[२]

नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में उत्पन्न हुए जीव के जन्म लेने के प्रथम समय में क्रम से क्रोध, माया, मान और लोभ कषाय का उदय होता है, इस नियम का कथन कषाय प्राभृत नामक द्वितीय सिद्धान्त ग्रंथ के व्याख्याता आचार्य यतिवृषभ के अभिप्राय को लेकर किया है। अथवा महाकर्म प्रकृति प्राभृत नामक प्रथम सिद्धान्त ग्रंथ के रचयिता आचार्य भूतबली के अभिप्राय से अनियम जानना। अर्थात् पूर्वोक्त नियम के बिना यथायोग्य कषाय का उदय होता है। 'अपि' शब्द समुच्च्य के लिए है। इसलिए दोनों ही आचार्यों के अभिप्राय हमारे लिए सन्देहास्पद हैं, दोनों में से किसी एक को मान्य करने की शक्ति हमारे में नहीं है, क्योंकि इस भरतक्षेत्र में केवली, श्रुतकेवली का अभाव है तथा आरातीय आचार्यों में दोनों सिद्धान्तों के रचयिताओं से अधिक ज्ञान नहीं है। यद्यपि विदेह में जाकर तीर्थंकर आदि के निकट में कोई आचार्य समस्त श्रुत के अर्थ के विषय में संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को दूर करके वस्तु का निर्णय कर सकते हैं, तथापि सिद्धान्तद्वय के कर्ताओं में जो विवाद है, उसके संबंध में 'यही ठीक है' ऐसा कौन बुद्धिशील श्रद्धान करेगा। अतः दोनों मतों का कथन किया है।।२८८।।

इन प्रकरणों को देखकर ग्रंथों का अर्थ प्रतिपादित करते समय अथवा प्रवचन करते समय इसी प्रकार से पूर्वाचार्यों के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए अपने और सुनने वालों के सम्यक्त्व को दृढ़ करना चाहिए।

---

१. कसायपाहुड़सुत्त प्रस्तावना से पृ.११। २. गोम्मटसार जीवकाण्ड, ज्ञानपीठ से प्रकाशित पृ. ४८०।

(6) श्री गणधरवलय मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

गणधरवलय मंत्र पाक्षिक प्रतिक्रमण — यति प्रतिक्रमण में प्रतिक्रमण भक्ति में आये हैं, वे श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ये यहाँ अड़तालीस — ४८ हैं। प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी जो कि श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा टीका ग्रन्थ है इसमें टीका में ४७ ही मंत्र हैं। इसका कारण समझ में नहीं आया।

आगे षट्खण्डागम सूत्रग्रन्थ के कर्ता श्री भूतबलि आचार्य ने वेदनाखण्ड के मंगलाचरण में इन मंत्रों को लिया है जो कि वर्तमान में नवमीं पुस्तक के रूप में मुद्रित है उसकी टीका श्री वीरसेनाचार्य ने 'धवला' नाम से की है। इसमें चवालीस-४४ मंत्र हैं।।

चार[१] आचार्यों द्वारा रचित 'गणधरवलय विधान' संस्कृत में ४८ मंत्रों के अड़तालीस अर्घ्य हैं एवं एक अन्य विद्वान -श्री मट्टिमडि महोपाध्याय द्वारा रचित एक विधान और संस्कृत में ही है, इसमें भी ४८ मंत्र ही हैं।

भक्तामरपाठ ऋद्धि-मंत्र सहित मुद्रित है उसमें भी ४८ मंत्र ही हैं।

तात्पर्य यह है कि षट्खंडागम ग्रन्थ में जो ४४ ही मंत्र हैं, हमें व आपको न तो अन्य किसी ग्रन्थों से इसमें मूल में मंत्र बढ़ाना है और न ४८ मंत्रों में से चार मंत्र हटाना ही है। श्रीगणधरदेव, गौतमस्वामी व उनकी रचना के आधार से जो ४८ व ४४ मंत्र का अंतर है हमें दोनों को प्रमाण मानना है।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(4) एकत्व भावना

हुट्टुव सायुव समयदि संगड खंडित बरुववरारण्णा।
बुट्टियलेनिदे बाळलि गळिसदे मेल्लने मरेयदे नोडण्णा।।
बरुवदु शुभाशुभार्जित कर्मवे यारिगू यारु जोतेगिल्ला।
मरदलि सेरिद हक्किगळन्ददि सेरुवुदगलुवदिल्लेल्ला।।३।।

इस संसार में यह जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। इसके साथ दूसरा कोई नहीं जाता है और न आता ही है। हे भाई! यह स्पष्टतया देखो, मात्र प्रत्येक जीव के साथ उसके किये हुए शुभ-अशुभ कर्म ही साथ जाते हैं बाकी कोई किसी के साथ नहीं जाता है। जैसे रात्रि में वृक्ष पर अनेक पक्षी आकर इकट्ठे हो जाते हैं और प्रातः होते ही अन्यत्र चले जाते हैं।

१. श्रीपद्मनंदि आचार्य, श्री शुभचंद्राचार्य, श्रीसकलकीर्ति आचार्य, श्री प्रभाचंद्राचार्य इन चार आचार्यों के विधान हैं व एक विद्वान उपाध्याय का है।

गणधरवलय मंत्र में अन्तर के प्रमाण

(विभिन्न ग्रंथों से)

क्रिया कलाप से[१]	प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी[२]	षट्खंडागम धवला टीका[३] पुस्तक ९
१. णमो जिणाणं	णमो जिणाणं	णमो जिणाणं
२. णमो ओहिजिणाणं	णमो ओहिजिणाणं	णमो ओहिजिणाणं
३. णमो परमोहिजिणाणं	णमो परमोहिजिणाणं	णमो परमोहिजिणाणं
४. णमो सव्वोहिजिणाणं	णमो सव्वोहिजिणाणं	णमो सव्वोहिजिणाणं
५. णमो अणंतोहिजिणाणं	णमो अणंतोहिजिणाणं	णमो अणंतोहिजिणाणं
६. णमो कोट्ठबुद्धीणं	णमो कोट्ठबुद्धीणं	णमो कोट्ठबुद्धीणं
७. णमो बीजबुद्धीणं	णमो बीजबुद्धीणं	णमो बीजबुद्धीणं
८. णमो पादाणुसारीणं	णमो पादानु (णु) सारीणं	णमो पादाणुसारीणं
९. णमो संभिण्णसोदाराणं	णमो संभिण्णसोदा-(द) राणं	णमो संभिण्णसोदाराणं
१०. णमो सयंबुद्धाणं	णमो सयंबुद्धाणं	०
११. णमो पत्तेयबुद्धाणं	णमो पत्तेयबुद्धाणं	०
१२. णमो बोहियबुद्धाणं	णमो बोहियबुद्धाणं	०
१३. णमो उजुमदीणं	णमो उजुमदीणं	णमो उजुमदीणं
१४. णमो विउलमदीणं	णमो विउलमदीणं	णमो विउलमदीणं
१५. णमो दसपुव्वीणं	णमो अभिण्णदसपुव्वीणं	णमो दसपुव्वियाणं
१६. णमो चउदसपुव्वीणं	णमो चोद्दसपुव्वीणं	णमो चोद्दसपुव्वियाणं
१७. णमो अट्ठंगमहाणिमित्त-कुसलाणं	णमो अट्ठंगमहाणिमित्त-कुसलाणं	णमो अट्ठंगमहाणिमित्त-कुसलाणं
१८. णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं	णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं	णमो विउव्वणपत्ताणं
१९. णमो विज्जाहराणं	णमो विज्जाहराणं	णमो विज्जाहराणं
२०. णमो चारणाणं	णमो चारणाणं	णमो चारणाणं
२१. णमो पण्णसमणाणं	णमो पण्णासमणाणं	णमो पण्णसमणाणं
२२. णमो आगासगामीणं	णमो आयासगामीणं	णमो आगासगामीणं
२३. णमो आसीविसाणं	णमो आसीविसाणं	णमो आसीविसाणं

१. क्रियाकलाप-पृ. ९२-९३ २. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. ८९ से ९५ तक। * दसपुव्वीणमित्येतावानेव पाठो झा-प्रतौ। ३. षट्खण्डागम-धवला टीका पुस्तक ९ पृ. २ से १०३ तक। षट्खण्डागम पुस्तकानि-९, १०, ११, १२ सिद्धान्तचिन्तामणि टीका पृ. ५६१, ५६२।

गणधरवलय पूजा में[४] (श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित)	गणधरवलय पूजा [५] (श्री पद्मनन्द्याचार्य विरचित)	गणधरवलय पूजा[६] (श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित)
१. णमो जिणाणं	णमो जिणाणं	णमो जिणाणं
२. णमो ओहिजिणाणं	णमो ओहिजिणाणं	णमो ओहिजिणाणं
३. णमो परमोहिजिणाणं	णमो परमोहिजिणाणं	णमो परमोहिजिणाणं
४. णमो सव्वोहिजिणाणं	णमो सव्वोहिजिणाणं	णमो सव्वोहिजिणाणं
५. णमो अणंतोहिजिणाणं	णमो अणंतोहिजिणाणं	णमो अणंतोहिजिणाणं
६. णमो कोट्ठबुद्धीणं	णमो कोट्ठबुद्धीणं	णमो कोट्ठबुद्धीणं
७. णमो बीजबुद्धीणं	णमो बीजबुद्धीणं	णमो बीजबुद्धीणं
८. णमो पादानुसारीणं	णमो पादाणुसारीणं	णमो पादाणुसारीणं
९. णमो संभिण्णसोदाराणं	णमो संभिण्णसोदाराणं	णमो संभिण्णसोदाराणं
१०. णमो सयंबुद्धाणं	णमो सयंबुद्धाणं	णमो सयंबुद्धाणं
११. णमो पत्तेयबुद्धाणं	णमो पत्तेयबुद्धाणं	णमो पत्तेयबुद्धाणं
१२. णमो बोहियबुद्धाणं	णमो बोहियबुद्धाणं	णमो बोहियबुद्धाणं
१३. णमो उजुमदीणं	णमो उजुमदीणं	णमो उजुमदीणं
१४. णमो विउलमदीणं	णमो विउलमदीणं	णमो विउलमदीणं
१५. णमो दसपुव्वीणं	णमो भिण्णदसपुव्वीणं	णमो दसपुव्वीणं
१६. णमो चउदसपुव्वीणं	णमो चउदसपुव्वीणं	णमो चउदसपुव्वीणं
१७. णमो अट्ठंगनिमित्त– कुसलाणं	णमो अट्ठंगमहाणिमित्त– कुसलाणं	णमो अट्ठंगमहाणिमित्त– कुसलाणं
१८. णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं	णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं	णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं
१९. णमो विज्जाहराणं	णमो विज्जाहराणं	णमो विज्जाहराणं
२०. णमो चारणाणं	णमो चारणाणं	णमो चारणाणं
२१. णमो पण्णसमणाणं	णमो आगासगामिणं	णमो पण्हसमणाणं
२२. णमो आगासगामीणं	णमो पण्णसमणाणं	णमो आगासगामीणं
२३. णमो आसीविसाणं	णमो आसीविसाणं	णमो आसीविसाणं

४. गणधरवलय पूजा तथा तत्त्वार्थसूत्र पूजा (श्री शान्तिवीर नगर, महावीर जी (राज. से प्रकाशित) पृ. १२ से २२ तक। ५. श्रीगणधरवलय पूजन संग्रह (प्रकाशक–पं. श्री गुलजारीलाल चौधरी, उदयपुर) पृ. १० से २७ तक। ६. श्री गणधरवलय पूजन संग्रह पृ. ५७ से ७१ तक।

क्रिया कलाप से	प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी	षट्खंडागम धवला टीका पुस्तक ९
२४. णमो दिट्ठिविसाणं	णमो दिट्ठिविसाणं	णमो दिट्ठिविसाणं
२५. णमो उग्गतवाणं	णमो उग्गतवाणं	णमो उग्गतवाणं
२६. णमो दित्ततवाणं	णमो दित्ततवाणं	णमो दित्ततवाणं
२७. णमो तत्ततवाणं	णमो तत्ततवाणं	णमो तत्ततवाणं
२८. णमो महातवाणं	णमो महातवाणं	णमो महातवाणं
२९. णमो घोरतवाणं	णमो घोरतवाणं	णमो घोरतवाणं
३०. णमो घोरगुणाणं	णमो घोरगुणाणं	णमो घोरपरक्कमाणं
३१. णमो घोरपरक्कमाणं	णमो घोरपरक्कमाणं	णमो घोरगुणाणं
३२. णमो घोरगुणबंभयारीणं	णमो घोरगुणबंभयारीणं	णमो ऽघोरगुणबंभचारीणं
३३. णमो आमोसहिपत्ताणं	णमो आमोसहिपत्ताणं	णमो आमोसहिपत्ताणं
३४. णमो खेल्लोसहिपत्ताणं	णमो खेल्लोसहिपत्ताणं	णमो खेल्लोसहिपत्ताणं
३५. णमो जल्लोसहिपत्ताणं	णमो जल्लोसहिपत्ताणं	णमो जल्लोसहिपत्ताणं
३६. णमो विप्पोसहिपत्ताणं	णमो विप्पोसहिपत्ताणं	णमो विट्ठोसहिपत्ताणं
३७. णमो सव्वोसहिपत्ताणं	णमो सव्वोसहिपत्ताणं	णमो सव्वोसहिपत्ताणं
३८. णमो मणबलीणं	णमो मणबलीणं	णमो मणबलीणं
३९. णमो वचिबलीणं	णमो वचिबलीणं	णमो वचिबलीणं
४०. णमो कायबलीणं	णमो कायबलीणं	णमो कायबलीणं
४१. णमो खीरसवीणं	णमो खीरसवीणं	णमो खीरसवीणं
४२. णमो सप्पिसवीणं	णमो सप्पिसवीणं	णमो सप्पिसवीणं
४३. णमो महुरसवीणं	णमो महुरसवीणं	णमो महुरसवीणं
४४. णमो अमियसवीणं	णमो अमियसवीणं	णमो अमडसवीणं
४५. णमो अक्खीणमहाणसाणं	णमो अक्खीणमहाणसाणं	णमो अक्खीणमहाणसाणं
४६. णमो बड्ढमाणाणं	०	०
४७. णमो सिद्धायदणाणं	णमो सिद्धायदणाणं	णमो लोए सव्वसिद्धायदणाणं
४८. णमो भयवदो महदि-महावीरवड्ढमाणबुद्ध-रिसीणो चेदि।	णमो भयवदो महदि-महावीरवड्ढमाणबुद्ध-रिसीणो चेदि।	णमो वद्धमाणबुद्धिरिसिस्स।

गणधरवलय पूजा में (श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित)	गणधरवलय पूजा (श्री पद्मनन्द्याचार्य विरचित)	गणधरवलय पूजा (श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित)
२४. णमो दिट्ठिविसाणं	णमो दिट्ठिविसाणं	णमो दिट्ठिविसाणं
२५. णमो उग्गतवाणं	णमो उग्गतवाणं	णमो उग्गतवाणं
२६. णमो दित्ततवाणं	णमो दित्ततवाणं	णमो दित्ततवाणं
२७. णमो तत्ततवाणं	णमो तत्ततवाणं	णमो तत्ततवाणं
२८. णमो महातवाणं	णमो महातवाणं	णमो महातवाणं
२९. णमो घोरतवाणं	णमो घोरतवाणं	णमो घोरतवाणं
३०. णमो घोरगुणाणं	णमो घोरगुणाणं	णमो घोरगुणाणं
३१. णमोघोरपरक्कमाणं	णमो घोरपरक्कमाणं	णमो घोरपरक्कमाणं
३२. णमो घोरगुणबंभयारीणं	णमो घोरगुणबंभयारीणं	णमो घोरगुणबंभयारीणं
३३. णमो आमोसहिपत्ताणं	णमो आमोसहिपत्ताणं	णमो आमोसहिपत्ताणं
३४. णमो खेल्लोसहिपत्ताणं	णमो खिल्लोसहिपत्ताणं	णमो खेल्लोसहिपत्ताणं
३५. णमो जल्लोसहिपत्ताणं	णमो जल्लोसहिपत्ताणं	णमो जल्लोसहिपत्ताणं
३६. णमो विप्पोसहिपत्ताणं	णमो विप्पोसहिपत्ताणं	णमो विप्पोसहिपत्ताणं
३७. णमो सव्वोसहिपत्ताणं	णमो सव्वोसहिपत्ताणं	णमो सव्वोसहिपत्ताणं
३८. णमो मणबलीणं	णमो मणबलीणं	णमो मणबलीणं
३९. णमो वचिबलीणं	णमो वचिबलीणं	णमो वचिबलीणं
४०. णमो कायबलीणं	णमो कायबलीणं	णमो कायबलीणं
४१. णमो खीरसवीणं	णमो खीरसवीणं	णमो खीरसवीणं
४२. णमो सप्पिसवीणं	णमो सप्पिसवीणं	णमो सप्पिसवीणं
४३. णमो महुरसवीणं	णमो महुरसवीणं	णमो महुरसवीणं
४४. णमो अमियसवीणं	णमो अमियसवीणं	णमो अमियसवीणं
४५. णमो अक्खीणमहाणसाणं	णमो अक्खीणमहाणसाणं	णमो अक्खीणमहाणसाणं
४६. णमो बड्ढमाणाणं	णमो बड्ढमाणाणं	णमो सिद्धायदणाणं
४७. णमो सिद्धायदणाणं	णमो लोए सव्वसिद्धायणाणं	णमो बड्ढमाणाणं
४८. णमो भयवदो महदिमहावीर-बड्ढमाणबुद्धिरिसीणं।	णमो भयवदो महदि-महावीरवड्ढमाणबुद्धिरिसीणं।	णमो भयवदो महदिमहावीर-वड्ढमाण बुद्धिरिसिणं।

(7) नव पदार्थ

श्री गौतमस्वामी विरचित पाक्षिक प्रतिक्रमण में—

'से अभिमद जीवाजीव-उवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जर-बंधमोक्खमहिकुसले।[१]।।''

१. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य, ४. पाप, ५. आस्रव, ६. संवर, ७. निर्जरा, ८. बंध और ९. मोक्ष। ये क्रम है।

यही क्रम षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक १३ में है।

''जीवाजीव- पुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि।
णवहिं पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण किं पि अत्थि, अणुवलंभादो।।[२]''

अर्थात् जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष इन नौ पदार्थों के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता।

यही क्रम समयसार ग्रन्थ में है–

(१५ ज.) भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३ अ.।।[३]

अर्थ—भूतार्थ से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व ही सम्यक्त्व हैं। उपर्युक्त समयसार की गाथा ही मूलाचार गाथा २०३ में है।

समयसार ग्रन्थ में इसी क्रम से अधिकार दिये गये हैं। यही क्रम गोम्मटसार जीवकांड में गाथा ६२१ में दिया गया है। देखिए—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं।
आसवसंवरणिज्जर बंधा मोक्खो य होंति त्ति[४]।।६२१।।

अर्थ—जीव, अजीव, उनके पुण्य और पाप दो तथा आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ पदार्थ होते हैं। पदार्थ शब्द प्रत्येक के साथ लगाना चाहिए, जैसे जीव पदार्थ, अजीवपदार्थ इत्यादि।।६२१।।

पंचास्तिकाय ग्रंथ में भी ९ पदार्थ का क्रम इसी प्रकार है–

जीवा-जीवा भावा पुण्णं पावं च आसंव तेसिं।
संवर-णिज्जर-बंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठ[५]।।१०८।।

गाथार्थ—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष इस प्रकार नव पदार्थों के नाम हैं।

भावसंग्रह में आचार्य श्री देवसेन जी ने भी ९ पदार्थ का यही क्रम रखा है–

ते पुण जीवाजीवा–पुण्णं पावो य आसवो य तहा।
संवर णिज्जरणं पि य बंधो मोक्खो य णव होंति[६]।।२८५।।

आगे श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा क्रम रखा है। यथा—

''जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।४।।

सूत्रार्थ—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

---

१. क्रियाकलाप पृ. १०७, मुनिचर्या पृ. २९२। २. षट्खण्डागम (धवला) पृ. १३, पृ. ६४। ३. समयसार पूर्वार्ध पृ. ६३। ४. गोम्मटसार जीवकाण्ड-(जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका) पृ. ८६१। ५. पंचास्तिकाय, पृ. २८०-२८१। ६. भावसंग्रह पृ. १८४।

किन्हीं विद्वान ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में श्री गौतमस्वामी की रचना में पाठ बदलकर ऐसा कर दिया है— **''से अभिमदजीवाजीव-उवलद्धपुण्णपाव-आसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।''** अर्थात् आस्रव के बाद तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार बंध को ले लिया है। किन्तु ऐसा करना उचित नहीं है क्योंकि प्रतिक्रमण की टीका में व समयसार आदि में मूलपाठ का ही क्रम रखा है। क्या कोई समयसार में अधिकारों के भी क्रम में परिवर्तन कर सकते हैं ? नहीं कर सकते हैं। समयसार में-श्री अमृतचंद्रसूरि व श्री जयसेनाचार्य ने भी इसी क्रम से अधिकारों की टीका की है, पहले जीवाजीवाधिकार, पुण्यपापाधिकार पुनः आस्रव, पुनः संवर, निर्जरा पुनः बंध और मोक्ष अधिकार लिये हैं।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के अनुसार ही उनके टीकाकार आचार्य श्री पूज्यपादस्वामी, आ. श्री अकलंकदेव, आचार्य श्री विद्यानंद महोदय, श्री श्रुतसागरसूरि आदि ने उसी क्रम से टीका, भाष्य आदि लिखे हैं।

द्रव्यसंग्रह में भी यही क्रम है उसमें पुण्य-पाप को अंत में ले लिया है। कहने का अभिप्राय यहाँ यही है कि इन किन्हीं की भी रचना में पाठ बदलने का अतिसाहस हमें व आपको नहीं करना चाहिये।

नव पदार्थ के क्रम में अन्तर

श्री गौतमस्वामी आदि कृत (पाक्षिक प्रतिक्रमण, समयसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार)	**श्री उमास्वामी आचार्यकृत** (तत्त्वार्थसूत्र एवं टीकाग्रंथ)	**श्री नेमिचंद्र आचार्य कृत** (द्रव्यसंग्रह)
१. जीव	१. जीव	१. जीव
२. अजीव	२. अजीव	२. अजीव
३. पुण्य	३. आस्रव	३. आस्रव
४. पाप	४. बंध	४. बंध
५. आस्रव	५. संवर	५. संवर
६. संवर	६. निर्जरा	६. निर्जरा
७. निर्जरा	७. मोक्ष	७. मोक्ष
८. बंध	८. ०	८. पुण्य
९. मोक्ष	९. ०	९. पाप

प्रारम्भ के नव को तत्त्व व पदार्थ समयसार टीका में दोनों नाम आये हैं तत्त्वार्थसूत्र में टीकाकारों ने आस्रव में ही पुण्य-पाप को गर्भित किया है एवं द्रव्यसंग्रह में गाथा ३७ में मोक्षतत्त्व का वर्णन करके पुनः गाथा ३८ में पुण्य-पाप को लिया है।

अन्यत्र ग्रन्थों में श्री उमास्वामी के क्रमानुसार सात को तत्त्व कहकर पुण्य-पाप मिलाने से इन्हें नव पदार्थ संज्ञा दी है।

(8) बारह तप

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत प्रतिक्रमण पाठ में तप आचार में ऐसा क्रम है—

प्रतिक्रमण पाठ में—

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीर-परिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।[१]

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

छह अभ्यंतर छह बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।

बाह्य तप के छह भेद हैं—१. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्तपरिसंख्यान, ४. रसपरित्याग, ५. कायक्लेश, ६. विविक्त-शयनासन।

अभ्यंतर तप के छह भेद हैं—१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान और ६. व्युत्सर्ग।

यही क्रम षट्खण्डागम की पुस्तक-१३ में सूत्र २५-२६ में तपों का वर्णन करते हुये पृ. ५४ से पृ. ८८ तक श्री गौतमस्वामी का ही क्रम लिया है।

जं तं तवोकम्मं णाम।।२५।।[२]

सूत्रार्थ—अब तपःकर्म का अधिकार है।।२५।।

तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मं णाम।।२६।।

सूत्रार्थ—वह तपःकर्म बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का है।

मूलाचार में बाह्यतप के नाम बतलाकर उनका क्रम से विस्तृत विवेचन करके अंतरंग तप के नाम बतलाकर क्रम से विस्तृत विवेचन किया है—

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।
कायस्स वि परितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं।।३४६।।[३]

अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तपरिसंख्यान, कायक्लेश और विविक्त शयनासन ये छह बाह्य तप हैं।।३४६।।

---

१. मुनिचर्या पृ. २०१-२०२। २. षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक-१३, पृ. ५४। ३. मूलाचार पूर्वार्ध-पृ. २८३, २९२।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो।।३६०।।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग –ये अभ्यन्तर तप हैं।।३६०।।

अनंतर श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में क्रम में अन्तर किया है—

अनशनावमौदर्यवृत्तपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशयनासनकायक्लेशा बाह्यं तपः।।१९।।
प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं।।२०।।

इन दोनों सूत्रों में पांचवें नंबर पर विविक्त शयनासन एवं छठे पर कायक्लेश लिया है ऐसे ही अभ्यंतर तप में पांचवें नंबर पर व्युत्सर्ग एवं छठे नंबर में ध्यान लिया है।

प्रतिक्रमण पाठ एवं मूलाचार के टीकाकारों ने भी अपने मूलग्रन्थ के आधार से ही टीका की है। एवं तत्त्वार्थसूत्र के सभी टीकाकारों ने सूत्र के अनुसार ही क्रम रखा है।

आजकल किन्हीं विद्वानों ने प्रतिक्रमण पाठ में तत्त्वार्थसूत्र का क्रम रखकर मूल पाठ बदल दिया है। यह सर्वथा अनुचित है। हमें और आपको पूर्वाचार्यों की मूल कृतियों में संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन नहीं करना चाहिये।

१२ तप के क्रम में अन्तर

श्री गौतमस्वामी कृत प्रतिक्रमण पाठ षट्खण्डागम पु. १३	श्री कुंदकुंददेव कृत मूलाचार	श्री उमास्वामी आचार्य कृत तत्त्वार्थसूत्र
बाह्यतप	**बाह्यतप**	**बाह्य तप**
१. अनशन	१. अनशन	१. अनशन
२. अवमौदर्य	२. अवमौदर्य	२. अवमौदर्य
३. वृत्तपरिसंख्यान	३. रस परित्याग	३. वृत्तपरिसंख्यान
४. रसपरित्याग	४. वृत्तपरिसंख्यान	४. रसपरित्याग
५. कायक्लेश	५. कायक्लेश	५. विविक्तशय्यासन
६. विविक्तशयनासन	६. विविक्तशयनासन	६. कायक्लेश
अभ्यंतर तप	**अभ्यंतर तप**	**अभ्यंतर तप**
१. प्रायश्चित्त	१. प्रायश्चित्त	१. प्रायश्चित्त
२. विनय	२. विनय	२. विनय
३. वैयावृत्य	३. वैयावृत्त्य	३. वैयावृत्य
४. स्वाध्याय	४. स्वाध्याय	४. स्वाध्याय
५. ध्यान	५. ध्यान	५. व्युत्सर्ग
६. व्युत्सर्ग	६. व्युत्सर्ग	६. ध्यान

(9) बंधप्रत्यय

बंध प्रत्यय अर्थात् बंध के कारण चार माने हैं।

श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में अनेक बार–

चउण्णं पच्चयाणं[१]। ''**चउसु पच्चएसु**[२]।।''

टीकाकारों ने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ऐसे नाम दिये हैं।

षट्खण्डागम में तो अनेक स्थलों पर ये प्रत्यय चार ही माने हैं। षट्खण्डागम में तृतीय खण्ड का नाम ही ''बंध स्वामित्व-विचय'' है। धवला पु. ८ में देखिए–

'मिच्छत्तासंजमकसाय-जोगा इदि एदे चत्तारि मूलपच्चया।[३]

अर्थात् मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार मूल प्रत्यय है।

इनके भेद ५७ हैं। मिथ्यात्व के ५, अविरति के १२, कषाय के २५ एवं योग के १५ भेद होते हैं।

विशेष—यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि–जो बन्ध के कारण हैं वे ही कर्म के आस्रव के कारण हैं। अतः 'आस्रव त्रिभंगी' छोटा सा ग्रंथ है, इसमें भी इन्हीं चार भेद के ५७ भेद करके गुणस्थान और मार्गणाओं में आस्रव, अनास्रव व आस्रव व्युच्छित्ति को अच्छी तरह समझाया गया है।

समयसार ग्रंथ में श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है–

सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंध कत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य बोद्धव्वा[४]।।१०९।।

अर्थ—सामान्य से बंध के करने वाले प्रत्यय–कारण चार हैं।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। ऐसा जानना चाहिये।

मूलाचार में भी चार प्रत्यय माने हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग।

मिच्छत्तं अविरमणं कषाय जोगा य आसवा होंति।
अरिहंत वुत्तअत्थेसु विमोहो होइ मिच्छत्तं।।२३६।।[५]

आगे श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने बंध के पांच कारण माने हैं। देखिये–तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ८ का प्रथम सूत्र—

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाययोगा बंधहेतवः।।१।।

यहाँ मिथ्यात्व के ५ भेद, अविरति के १२, प्रमाद के १५, कषाय के २५ व योग के १५ भेद लिये हैं। सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में श्री पूज्यपाद स्वामी ने अनेक भेद कहे हैं–

सूत्रार्थ—**मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं**[६]।।१।।

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का है–नैसर्गिक और परोपदेशपूर्वक। इनमें से जो परोपदेश के बिना मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जीवादि पदार्थों का अश्रद्धानरूप भाव होता है वह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है तथा परोपदेश के निमित्त से होने वाला मिथ्यादर्शन चार प्रकार का है–क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनयिक। अथवा

---

१. मुनिचर्या पृ. २५। २. मुनिचर्या पृ. १३५-१६९। ३. धवला पुस्तक-८ पृ. १९-२०। ४. समयसार पृ. ३९३। ५. मूलाचार, पृ. २००। ६. सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८, सूत्र-१, पृ. २९१ से २९३।

मिथ्यादर्शन पाँच प्रकार का है–एकान्त मिथ्यादर्शन, विपरीतमिथ्यादर्शन, संशयमिथ्यादर्शन, वैनयिकमिथ्यादर्शन और अज्ञानिक मिथ्यादर्शन। यही है, इसी प्रकार का है इस प्रकार धर्म और धर्मों में एकान्तरूप अभिप्राय रखना एकान्त मिथ्यादर्शन है। जैसे यह सब जग परब्रह्मरूप ही है, या सब पदार्थ अनित्य ही हैं या नित्य ही है।। सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ मानना, केवली को कवलाहारी मानना और स्त्री सिद्ध होती है इत्यादि मानना विपर्यय मिथ्यादर्शन है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर क्या मोक्षमार्ग है या नहीं, इस प्रकार किसी एक पक्ष को स्वीकार नहीं करना संशय मिथ्यादर्शन है। सब देवता और सब मतों को एक समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है। हिताहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञानिक मिथ्यादर्शन है कहा भी है–"क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के चौरासी, अज्ञानियों के सड़सठ और वैनयिकों के बत्तीस भेद हैं।

छहकाय के जीवों की दया न करने से और छह इन्द्रियों के विषय भेद से अविरति बारह प्रकार की है। सोलह कषाय और नौ नोकषाय ये पच्चीस कषाय हैं। यद्यपि कषायों से नोकषायों में थोड़ा भेद है पर वह यहाँ विवक्षित नहीं है, इसलिए सबको कषाय कहा है। चार मनोयोग, चार वचनयोग और पाँच काययोग ये योग के तेरह भेद हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आहारक ऋद्धिधारी मुनि के आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोग भी सम्भव हैं इस प्रकार योग पन्द्रह भी होते हैं। शुद्धयष्टक और उत्तम क्षमा आदि विषयक भेद से प्रमाद अनेक प्रकार का है। इस प्रकार ये मिथ्यादर्शन आदि पाँचों मिलकर या पृथक्-पृथक् बन्ध के हेतु हैं।

स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मिथ्यादृष्टि जीव के पाँचों ही मिलकर बंध के हेतु हैं। सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि के अविरति आदि चार बंध के हेतु हैं। संयतासंयत के विरति और अविरति ये दोनों मिश्ररूप तथा प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं। प्रमत्तसंयत के प्रमाद, कषाय और योग ये तीन बन्ध के हेतु हैं। अप्रमत्तसंयत आदि चार के योग और कषाय ये दो बन्ध के हेतु हैं। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली इनके एक योग ही बन्ध का हेतु है। अयोगकेवली के बन्ध का हेतु नहीं है।

द्रव्यसंग्रह में मूल में पाँच भेद मानकर उनके प्रभेद कम किये है। यथा—

मिच्छत्ताविरदिपमाद-जोगकोहादओथ विण्णेया।
पण पण पण दह तिय चउ, कमसो भेदा दु पुव्वस्स[१]**।।३०।।**

अर्थ–पाँच मिथ्यात्व, पाँच अविरति, पंद्रह प्रमाद, तीनयोग और चार कषाय ये बत्तीस भेद भी भावास्रव के होते हैं।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में बन्धप्रत्यय के भेद—

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया[२]**।।६८६।।**

अर्थ—मिथ्यात्व–अविरति–कषाय और योग, ये चार मूल आस्रव हैं तथा इनके उत्तर भेद क्रम से ५,१२, २५ और १५ जानने। इस प्रकार आस्रवों के उत्तर भेद ५७ हैं।

अथानन्तर मूल प्रत्ययों को गुणस्थानों में कहते हैं—

चदुपच्चइगो बंधो पढमे णंतरतिगे तिपच्चइगो।
मिस्सगविदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि।।७८७।।

---

१. द्रव्यसंग्रह, गाथा-३०। २. गोम्मटसार कर्मकाण्ड (आचार्य शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित) पृ. ७०९ से ७११।

उवरिल्लपंचये पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं।।७८८।।

अर्थ—मिथ्यात्वगुणस्थान में चारों प्रत्ययों से बन्ध होता है अनन्तर सासादनमिश्र व असंयत इन तीन गुणस्थानों में मिथ्यात्व बिना तीन प्रत्ययों से बन्ध होता है, (देश अर्थात् किंचित् असंयम जहाँ है उसको दिशति–त्यागे ऐसे) देशसंयतगुणस्थान में अढ़ाई प्रत्यय हैं। (यहाँ विशेषता यह है कि अविरतिप्रत्यय विरति से मिश्रित हुआ है शेष दो प्रत्यय पूर्ण), आगे प्रमत्त से सूक्ष्मसाम्पराय–गुणस्थानपर्यन्त एक योग प्रत्यय ही है। इस प्रकार सामान्य से आठ कर्मों के प्रत्यय गुणस्थानों में जानना चाहिए।

इन दो प्रकार से कहे बंध अथवा आस्रव के कारणों को समझ कर उन–उन आचार्यों की कृति में परिवर्तन या परिवर्धन नहीं करना चाहिये।

श्री गौतमस्वामी, श्री पुष्पदंत–भूतबली आचार्य, श्रीकुंदकुंददेव के कथित ग्रंथों में बंध के चार कारण व उनके ५७ भेदों को समझना चाहिये। आगे श्री उमास्वामी आचार्य व श्री नेमिचंद्राचार्य आदि आचार्यों के प्रमाद सहित पाँच भेदों को व उनके प्रभेदों को भी उनके टीका ग्रंथों से जानना चाहिये।

हमारे व आपके लिये ये सभी आचार्य देव प्रमाणीक हैं व उनके ग्रन्थ प्रमाणीक हैं।

बंध प्रत्यय-बंध के कारण में अन्तर

ग्रन्थ	बंध प्रत्यय संख्या	नाम	उत्तर भेद
१. प्रतिक्रमण पाठ	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग	५७
२. षट्खण्डागम ध. पु. ८	४	मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग	५७
३. आस्रव त्रिभंगी	४	मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग	५७
४. समयसार	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग	अनेक
५. मूलाचार	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग	५७
६. गोम्मटसार कर्मकाण्ड	४	मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग	५७
७. तत्त्वार्थसूत्र	५	मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग	७२
८. सर्वार्थसिद्धि	५	मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग	अनेक
९. द्रव्यसंग्रह	५	मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय	३२

(10) धर्मध्यान

श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में धर्म्यध्यान के दश भेद कहे हैं—

'दसण्णं धम्मज्झाणाणं। दससु धम्मज्झाणेसु। दससु धम्मज्झाणेसु दसविह धम्मज्झाणाणं।[१]

टीकाकार श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने उनके नाम व लक्षण दिये हैं—

१. अपायविचय, २. उपायविचय, ३. विपाकविचय, ४. विरागविचय, ५. लोकविचय, ६. भवविचय, ७. जीवविचय, ८. आज्ञाविचय, ९. संस्थानविचय और १०. संसारविचय ये १० धर्मध्यान है[२]।

चारित्रसार में भी धर्मध्यान के दश भेद कहे हैं[३]—

वह शुभ ध्यान दो प्रकार का है–एक धर्म्यध्यान और दूसरा शुक्लध्यान। उनमें भी बाह्य और अभ्यंतर के भेद से धर्म्यध्यान भी दो प्रकार का है। जिसे अन्य लोग भी अनुमान से जान सकें उसे बाह्य धर्म्यध्यान कहते हैं। सूत्रों के अर्थ की गवेषणा (विचार या मनन करना), व्रतों को दृढ़ रखना, शील गुणों में अनुराग रखना, हाथ, पैर, मुंह आदि शरीर का परिस्पंदन और वाग् व्यापार को बन्द करना, जम्भाई लेना, जम्भाई के उद्गार प्रकट करना, छींकना तथा प्राण अपान का उद्रेक आदि सब क्रियाओं का त्याग करना बाह्य धर्म्यध्यान है। जिसे केवल अपनी ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक कहते हैं। **वह आध्यात्मिक धर्म्यध्यान, अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाकविचय, विरागविचय, भवविचय, संस्थानविचय, आज्ञाविचय और हेतुविचय के भेद से दस प्रकार का है।**[३] जिसने देखे, सुने और अनुभव किये हुये सब दोष छोड़ दिये हैं, जिसके कषायों का उदय अत्यन्त मंद है और जो अत्यन्त श्रेष्ठ भव्य है उसी के यह दसों प्रकार का धर्म्यध्यान होता है।

मूलाचार में धर्म्यध्यान के चार भेद माने हैं—

धर्मध्यानभेदान् प्रतिपादयन्नाह—

एयग्गेण मणं णिरुंभिऊण धम्मं चउव्विहं झाहि।
आणापायविवायविचओ य संठाणविचयं च[४]**।।३९८।।**

धर्मध्यान के भेदों को कहते हैं—

गाथार्थ—एकाग्रतापूर्वक मन को रोककर उस धर्म का ध्यान करो जिसके आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चार भेद हैं।।३९८।।

ज्ञानार्णव ग्रन्थ में भी चार भेद हैं—

आज्ञापायविपाकानां क्रमशः संस्थितेस्तथा।
विचयो यः पृथक् तद्धि धर्मध्यानं चतुर्विधम्।।५।।[५]

अर्थ—आज्ञा, अपाय, विपाक तथा संस्थान इनका भिन्न–भिन्न विषय (विचार) अनुक्रम से करना ही धर्मध्यान के चार प्रकार हैं।

---

१. मुनिचर्या पृ. २४, १३५, १७०, २३१। २. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी पृ. १४७–१४८। ३. चारित्रसार पृ. १५८। ४. मूलाचार पृ. ३१३। ५. ज्ञानार्णव–सर्ग–२३, पृ. २६२।

ऐसे ही श्री उमास्वामी आचार्य ने भी चार भेद कहे हैं–

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं।।३६।।[१]

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये धर्म्मध्यान के चार भेद हैं।

षट्खंडागम ग्रन्थ धवला पु. १३ में धर्मध्यान को दशवें गुणस्थान तक एवं मूलाचार में भी दशवें तक माना है। यथा—

''असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजद-अपमत्तसंजद-अपुव्वसंजद-अणियट्टिसंजद-सुहुमसांपरायखवगोवसामएसु धम्मज्झाणस्स पवुत्ती होदित्ति जिणोवएसादो।।[२]''

असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय इन चौथे से दशवें गुणस्थानों तक धर्म्यध्यान की प्रवृत्ति होती है।

मूलाचार में कहा है—

उवसंतो दु पुहुत्तं झायदि झाणं विदक्कवीचारं।
खीणकसाओ झायदि एयत्तविदक्कवीचारं।।४०४।।[३]

गाथार्थ—उपशान्तकषाय मुनि पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं। क्षीणकषाय मुनि एकत्ववितर्क अवीचार नामक ध्यान करते हैं।।४०४।।

उपशांतकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान में पृथक्त्ववितर्क वीचार नाम का प्रथम शुक्लध्यान है इससे स्पष्ट है कि इससे पूर्व दशवें तक धर्मध्यान है।

भगवती आराधना में भी ग्यारहवें गुणस्थान में प्रथम शुक्लध्यान, बारहवें में द्वितीय, तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली के तृतीय शुक्लध्यान एवं चौदहवें गुणस्थान में चतुर्थ शुक्लध्यान होता है। अतः इससे पूर्व दसवें गुणस्थान तक धर्मध्यान है।

दव्वाई अणेयाइं तीहिं वि जोगेहिं जेण ज्झायंति।
उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तं त्ति तं भणिया[४]**।।१८७४।।**

गाथार्थ—उपशान्त मोहनीय गुणस्थान वाले यतः तीन योगों के द्वारा अनेक द्रव्यों को बदल-बदलकर ध्यान करते हैं इससे इसे पृथक्त्व कहते हैं।

जेणेगमेव दव्वं जोगेणेगेण अण्णदरगेण।
खीणकसाओ ज्झायदि तेणे गत्तं तयं भणियं।।१८७७।।

गाथार्थ—दूसरे शुक्लध्यान का नाम एकत्ववितर्क है क्योंकि इसमें एक ही योग का अवलम्बन लेकर एक ही द्रव्य का ध्यान किया जाता है। अतः एक द्रव्य का अवलम्बन लेने से इसे एकत्व कहते हैं। यह ध्यान किसी एक योग में स्थित आत्मा के ही होता है। इसका स्वामी क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती मुनि होता है।।

सुहुमम्मि कायजोगे वट्टंतो केवली तदियसुक्कं।
झायदि णिरुंभिदुं जे सुहुमत्तं कायजोगं पि।।१८८१।।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ९ सूत्र ३६, २. षटखंडागम, धवला पु. १३ पृ. ७४। ३. मूलाचार पृ. ३१८ गाथा ४०४। ४. भगवती आराधना गाथा १८७४-१८७७-१८८१-१८८३।

गाथार्थ—अतः सूक्ष्मकाययोग में स्थित केवली के उस सूक्ष्म भी काययोग को रोकने के लिए तीसरा शुक्लध्यान आता है।।१८८१।।

तं पुण णिरुद्धजोगो सरीरतियणासणं करेमाणो।
सवण्हु अपडिवादी ज्झायदि ज्झाणं चरिमसुक्कं।।१८८३।।

गाथार्थ—काययोग का निरोध करके अयोगकेवली औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों का नाश करता हुआ अन्तिम शुक्लध्यान को ध्याता है। सूक्ष्म काययोगरूप आत्मपरिणाम वाला सयोगकेवली तीसरे शुक्लध्यान को ध्याता है और अयोगरूप आत्मपरिणाम वाला अयोगकेवली चतुर्थ शुक्लध्यान को ध्याता है। यह तीसरे और चतुर्थ शुक्लध्यान में भेद है।।१८८३।।

तत्त्वार्थसूत्र की टीका में श्रेणी में प्रथम शुक्लध्यान माना है एवं श्रेणी चढ़ने से पूर्व तक ही धर्मध्यान माना है देखिये—

''श्रेण्यारोहणात्प्राग्धर्म्यं, श्रेण्योः शुक्ले इति व्याख्यायते।[१]।

अर्थात् श्रेणी चढ़ने से पूर्व धर्मध्यान होता है और दोनों श्रेणियों में आदि के दो-दो शुक्लध्यान होते हैं ऐसा व्याख्यान करना चाहिए।

हमारे लिये ये सभी आचार्य प्रमाण हैं अतः उन-उन ग्रन्थों के अनुसार मान्यता रखनी चाहिये। एक ग्रन्थ में दूसरे ग्रन्थ से परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

धर्मध्यान के भेद में अन्तर

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी १० भेद	**चारित्रसार** १० भेद	**मूलाचार** ४ भेद	**ज्ञानार्णव** ४ भेद	**तत्त्वार्थसूत्र** ४ भेद
१. अपायविचय	अपाय विचय	आज्ञाविचय	आज्ञाविचय	आज्ञाविचय
२. उपायविचय	उपायविचय	अपायविचय	अपायविचय	अपायविचय
३. विपाकविचय	जीवविचय	विपाक विचय	विपाकविचय	विपाकविचय
४. विराग विचय	अजीव विचय	संस्थान विचय	संस्थान विचय	संस्थान विचय
५. लोक विचय	विपाक विचय			
६. भव विचय	विराग विचय			
७. जीव विचय	भव विचय			
८. आज्ञा विचय	संस्थान विचय			
९. संस्थान विचय	आज्ञा विचय			
१०. संसार विचय	हेतु विचय			

१. सर्वार्थसिद्धि अ. ९, सूत्र ३७, पृ. ३५७।

(11) ज्ञान-दर्शन के नामों में अन्तर
(विभिन्न ग्रंथों में)

षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक-१ में ज्ञान के प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद

सूत्र—**णाणाणुवादेण अत्थि मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी विभंग-णाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी चेदि।।११५।।**[१]

सूत्रार्थ—**ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मति-अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव होते हैं।।११५।।**

तदपि ज्ञानं द्विविधम्—प्रत्यक्षं परोक्षमिति। परोक्षं द्विविधम्—मतिः श्रुतमिति।

वह ज्ञान दो प्रकार का है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष के दो भेद है—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

प्रत्यक्षं त्रिविधम्-अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति।

साक्षान्मूर्ताशेषपदार्थ-परिच्छेदकमवधिज्ञानम्। साक्षान्मनः समादाय मानसार्थानां साक्षात्करणं मनःपर्ययज्ञानम्। साक्षात्त्रिकालगोचराशेषपदार्थ परिच्छेदकं केवलज्ञानम्। मिथ्यात्वसमवेतमिन्द्रियजज्ञानं मत्यज्ञानम्। तेनैव समवेतः शाब्दः प्रत्ययः श्रुताज्ञानम्। तत्समवेतमवधिज्ञानं विभङ्गज्ञानम्।[२]

प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन भेद हैं—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। सम्पूर्ण मूर्त पदार्थों को साक्षात् जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। मन का आश्रय लेकर मनोगत पदार्थों के साक्षात्कार करने वाले ज्ञान को मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। त्रिकाल के विषयभूत समस्त पदार्थों को साक्षात् जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व समवेत ज्ञान को मत्यज्ञान कहते हैं। शब्द के निमित्त से जो एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का मिथ्यात्व समवेत ज्ञान होता है, उसे श्रुत अज्ञान कहते हैं। मिथ्यादर्शनसमवेत अवधिज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं।

नियमसार ग्रंथ में ज्ञान के स्वभाव-विभाव भेद—

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवजोगो दुविहो सहावणाणं विभावणाणं ति[३]**।।१०।।**

अर्थ—जीव उपयोगमयी है। उपयोग ज्ञान और दर्शन इन दो भेदरूप है। स्वभावज्ञान और विभावज्ञान इस प्रकार से ज्ञानोपयोग के ये दो प्रकार हैं।

स्वभावज्ञान एवं विभावज्ञान के भेद—

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं त्ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।

अर्थ—जो केवल, इन्द्रियरहित और असहाय है, वह स्वभाव ज्ञान है। संज्ञान और मिथ्याज्ञान के भेद से

१-२. षट्खण्डागम (धवला) पुस्तक १, पृ. ३५५, ३५६, ३६०। ३. नियमसार प्राभृत पृ. २८ से ४० तक।

दो प्रकार का विभावज्ञान होता है।

संज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप विभावज्ञान के भेद—

सण्णाणं चउभेदं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं मदियाई भेददो चेव।।१२।।

अर्थ—संज्ञान के चार भेद हैं-मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान और मति आदि के भेद से अज्ञान भी तीन प्रकार का है।

दर्शनोपयोग के भेद एवं स्वभाव दर्शनोपयोग का लक्षण—

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

अर्थ—वैसे ही स्वभाव और विभाव के भेद से दर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है। जो इन्द्रियों से रहित और असहाय है वह केवलदर्शन स्वभावदर्शन कहा गया है।

विभावदर्शन के भेद—

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विभावदिच्छित्ति।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ।।१४।।

अर्थ—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ये तीनों विभाव दर्शन कहे गये हैं। पर्याय के दो भेद हैं-स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में ज्ञान के प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्।।९।।[१]

सूत्रार्थ—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच प्रकार के ज्ञान होते हैं।

तत्प्रमाणे।।१०।।

सूत्रार्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान ये पाँचों ही ज्ञान प्रमाण हैं। जो प्रत्यक्ष और परोक्षरूप हैं।

परोक्षप्रमाण के भेद—

आद्ये परोक्षम्।।११।।

सूत्रार्थ—पहले के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं। (क्योंकि ये इन्द्रियों की सहायता से होते हैं।)

प्रत्यक्ष प्रमाण के भेद—

प्रत्यक्षमन्यत्।।१२।।

सूत्रार्थ—शेष तीन अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। (क्योंकि ये ज्ञान पर निमित्त की अपेक्षा के बिना स्वयं आत्मा द्वारा होते हैं।)

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र ९, १०, ११, १२।

द्रव्यसंग्रह ग्रंथ में ज्ञान और दर्शन के परोक्ष-प्रत्यक्ष भेद—

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं[१]।।४।।

गाथार्थ—उपयोग दो प्रकार का है-दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग।

उनमें से दर्शन के चार भेद हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

ज्ञान के ८ भेद हैं—

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च।।५।।

गाथार्थ—मति, श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान ऐसे छह भेदरूप होते हैं तथा मनःपर्यय और केवलज्ञान मिलाकर आठ प्रकार का है। इनमें प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद हैं।

मति, श्रुत, कुमति, कुश्रुत ये चार ज्ञान परोक्ष हैं। अवधिज्ञान, कुअवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये एक देश प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सर्वप्रत्यक्ष हैं।

आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनंदि विरचित परीक्षामुख ग्रंथ में—

मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है—

स्वपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्।।१।।[२]

सूत्रार्थ—अपना और अपूर्वार्ध का निश्चायक ज्ञान प्रमाण कहलाता है।

तद्द्वेधा।।१।।

सूत्रार्थ—प्रमाण के दो भेद हैं।

प्रत्यक्षेतरभेदात्।।२।।

सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण के दो भेद हैं।

विशदं प्रत्यक्षम्।।३।।

सूत्रार्थ—विशद (निर्मल या स्पष्ट) ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।।५।।

सूत्रार्थ—इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाले एक देश विशद (निर्मल) ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति।।९।। प्रत्यक्षमिति शेषः।।

सूत्रार्थ—अपने आवरण कर्म के क्षयोपशमरूपी योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाण 'यह घट है और यह पट है।' इस प्रकार पदार्थों की जुदी-जुदी व्यवस्था कर देता है। अर्थात् ज्ञान के आवारक कर्म का क्षयोपशम जैसे-जैसे होता जाता है, तैसे ही पदार्थ, ज्ञान का विषय होने लगता है।

सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात्।।१२।।

सूत्रार्थ—जिस ज्ञान के आवरणसहितपना और इन्द्रियजन्यपना होता है उसमें प्रतिबंध (व्याघात) संभव

---

१. द्रव्यसंग्रह, गाथा ४-५। २. परीक्षा मुख-प्रथम परिच्छेद सूत्र १, द्वितीय परिच्छेद, सूत्र १, २, ३, ९।

होता है, इसलिए जो निरावरण और अतीन्द्रिय होता है, वही मुख्य प्रत्यक्ष है।

श्रुतज्ञान को परोक्ष माना है—

परोक्षमितरत्।।१।।[१]

सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न सर्व प्रमाण परोक्ष हैं। अर्थात् अविशदज्ञान को परोक्ष कहते हैं।

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम्।।२।।

सूत्रार्थ—परोक्ष प्रमाण के प्रत्यक्ष और स्मृति आदिक कारण हैं तथा स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पाँच भेद हैं। स्मृति आदिक आगे-आगे कारण हैं और प्रत्यक्ष भी उनका कारण हैं।

आप्तवचनादिनिबंधनमर्थज्ञानमागमः।।९५।।

सूत्रार्थ—आप्त के वचन तथा अंगुलि संज्ञा आदि से होने वाले अर्थ (तात्पर्य) ज्ञान को आगम (आगमप्रमाण) कहते हैं।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(11) बोधिदुर्लभ भावना

भूजल तरुमोदलादेकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय पञ्चेन्द्रियवु।
निजकुल बलवा जातिय रूपवु शरीर बुद्धियु गुरुगुणवु।।
उत्तम सम्पद समाधि कोनेयलि दुर्लभवेंबुदु मरेयदिरु।
सत्तरु बदुकुव दारिय तोरुव श्री जिनचरणव तोरेयदिरु।।

इस जगत में पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि स्थावर एकेन्द्रिय से त्रस पर्याय में दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चार इन्द्रिय होना दुर्लभ है, पुनः पंचेन्द्रिय होना दुर्लभ है। इसको पाकर उत्तम कुल, बल, जाति, रूप, शरीर स्वस्थता, बुद्धि और श्रेष्ठ गुणों का पाना दुर्लभ है। इन सबको पाकर भी उत्तम संयम पाना पुनः अंत में समाधिमरण प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ है। इन सबको पाकर हे भव्य! तुम जिनराज के चरणों का आश्रय लेवो कि जिससे जन्म-मरण की परम्परा समाप्त हो जावे।

---

१. परीक्षा मुख-तृतीय परिच्छेद, सूत्र १, २, ९५।

(12) पच्चीस भावना

श्री गौतम गणधर स्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में पच्चीस भावनाओं के नाम दिए हैं—

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे[१]।।१।।
मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा- समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।२।।
अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि - भास - कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।३।।
अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।४।।
इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।५।।
सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।६।।

(पच्चीस भावना)

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।१।।
मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।२।।
क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।३।।
अदेहनं - यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह- गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।४।।
स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।५।।
सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।६।।

---

१. मुनिचर्या पृ. २८३-२८४।

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में टीकाकार श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने पच्चीस भावनाओं का वर्णन किया है—

चूलियं तु पच्चक्खामीत्यादि।। उक्तानुक्तार्थचिंतनरूपां चूलिकां पुनरिदानीं प्रवक्ष्यामि। तस्यां च वक्ष्यमाणायां भावनाः पंचविंशतिस्तावद्वक्ष्यंते। ताश्च विभागेन पंच पंच।। **अणुण्णादा।।** अनुज्ञाता अभ्युपगताः। क्व ? **एक्केक्कम्हि महव्वदे।।** एकस्मिन्नेकस्मिन्महाव्रते। तत्र।। **पढमं वदमस्सिदो।।** प्रथमं प्राणातिपाताद्विरति-लक्षणं महाव्रतमाश्रितः स्वीकृतवानहम्।। **मणगुत्त** इत्यादि। पंचभावनापरो भवामि।। मनो गुप्तं रक्षितं नियंत्रितं येनाऽसौ मनोगुप्तोऽहं भवामि। तथा वचो गुप्तं येनाऽसौ वचोगुप्तश्चेति। वाग्गुप्तिपरो भवामि।। मनोगुप्तं रक्षितं नियंत्रितं योनाऽसौ मनोगुप्तोऽहं भवामि। तथा वचो गुप्तं योनाऽसौ वचोगुप्तश्चेति। वाग्गुप्तिपरो भवामि।। **इरियाकायसंयदो।।** ईरणमीर्या गमनं। तत्र संयतः प्राणिपीडापरिहारपरो भवामि। कायेन च तत्पीडापरिहारपरो भवामि।। **एसणासमिदिसंजुत्तो।।** अन्नादेरुद्गमादिदोषपरिहारेण गृहणमेषणासमितिः। तया संयुक्तो विशिष्टो भवामि। एताभिर्भावनाभिर्युक्तस्य प्राणातिपातविरतिव्रतं निर्मलं भवतीत्यर्थः। तथा।। **बिदियं वदमस्सिदो।।** द्वितीयं मृषावादाद्विरतिलक्षणं महाव्रतमाश्रितोऽहं क्रोधादिपंचभावनापरो भवामीत्याह।। **अकोहण इत्यादि।।** न विद्यते क्रोधनं क्रोधो यस्याऽसावक्रोधनः।। **अलोहो य।।** न विद्यते लोभोयस्याऽसावलोभश्चाहं भवामि। न केवलमक्रोधन एवालोभ एव चाहं भवामि। अपि तु।। **भयहस्सविविज्जिदो।।** भयं च हास्यं च ताभ्यां विशेषेण वर्जितो भवामि।। **अणुवीचिभासकुसलो।।** अनुवीचिभाषाऽऽगमभाषया भाषणं। तत्र कुशलः प्रवीणोऽहं भवामि। एताभिः पंचभिर्भावनाभिरुपेतस्य मृषावादविरतिलक्षणं निर्मलभवतिष्ठते।। तथा।। **तदियं वदमस्सिदो।।** तृतीयमदत्तादानाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं।। पंचभावनापरो भवामीत्याह।। **देहणमित्याहि।** कर्मवशादुपात्तो यो मया देहः स एव मे धनं परिग्रहो, नान्यो मे परिग्रह इति। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्ट–' मिति धकारलोपः। अथवा देहनं। दिह लेपे। इदं शरीरादिकमात्मनो देहनमुपलेपः कर्मकृतं गुरुत्वं, न पुनरुपकारकमित्येवं भावनापरो भवामि।। **भावणं चावि।।** देह एव याऽशुचित्वानित्यत्वादिभावना तां चापि भावयामि।। **ओग्गहं च।।** अवग्रहं च। निवृत्तिं भावयामि। क्व ? **परिग्गहे।।** परिग्रहविषये। तथा।। **संतुट्ठो।** गृद्धिरहितो भवामि। क्व ? **भत्तपाणेसु।।** भक्तमोदनं पानं दुग्धमथितशिखरिण्यादि। उपलक्षणं चैतत्खाद्यस्वाद्यानां। तेषु। एवंविधाः पंच भावना भावयतोऽदत्तादानाद्विरतिव्रतं निर्मलं भवति। तथा।। **चउत्थं वदमस्सिदो।।** चतुर्थं मैथुनाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं। स्त्रीकथादिभ्यो निवृत्तो भवामीत्याह।। **इत्थिकहेत्यादि।।** स्त्रीकथा च स्त्रीसंसर्गश्च स्त्रीभिः सह हास्यं च खेदश्च वर्करः प्रलोकनं च सरागं स्त्रीवदनाद्यवलोकनमिति द्वंद्वैकवद्भावः। तस्मिन्।। **णियत्तो य।।** निवृत्त एवाहं भवामि। कृत एतत् ? **णियमम्हि ठिदो।।** नियमे व्रते स्थितोऽहं यतः। व्रती यतोऽहमित्यर्थः। तत उक्तपंचभावनापरो भवामि, तत्परस्यैव चतुर्थव्रतनिर्मलतोपपत्तेः। स्थितशब्दरहिते णियमम्हि इति पाठे निवृत्तो नियमेनेत्यर्थः। तथा।। **पंचमं वदमस्सिदो।।** पंचमं परिग्रहाद्विरतिलक्षणं व्रतमाश्रितोऽहं। सचित्तादिभ्यो विरतो

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १३१ से १३४ तक।

भवामीत्याह।। **सचित्तेत्यादि।।** सचित्तद्रव्याणि दासीदासादीनि, अचित्तद्रव्याणि धनधान्यादीनि। तेषु विरतो भवामि। तथा।। **बज्झब्भंतरेसु य।।** बाह्याभ्यंतरेषु च द्रव्येषु विरतो भवामि। बाह्यानि वस्त्राभरणादीनि, अभ्यंतराणि तु द्रव्याणि ज्ञानावरणादीनि। तथा।। **परिग्गहादो।।** गृहक्षेत्रादिलक्षणात्परिग्रहाद्विरतो भवामि। एवंविधाः पंच भावना भावयतः परिग्रहाद्विरतिव्रतं निर्मलमवतिष्ठते। पंचापि हीमानिव्रतानि प्रतिज्ञारूपाणि, अभिसंधिकृतो नियमो व्रतमित्यभिधानात्। तत्र च।।

भावार्थ—उक्त और अनुक्त अर्थ का चिन्तन करना चूलिका है। उसका अर्थ कहता हूँ। उसमें पच्चीस भावनाएँ हैं, जो कि एक एक महाव्रत में पाँच-पाँच स्वीकार की गई हैं।।१।।[१]

मन से गुप्त, वचन से गुप्त, गमन करते समय काय से प्राणियों की पीड़ा के परिहार में तत्पर तथा एषणा समिति से संयुक्त होता हूँ। अन्यत्र भावना कही गई हैं यहाँ उन भावनाओं से सहित व्यक्ति कहा गया है। जो कि अभिन्न होने से भावना ही है, क्योंकि भावनाओं से युक्त व्यक्ति के ही अहिंसा व्रत निर्मल होता है।।२।।

क्रोध से रहित, लोभ से रहित, भय से वर्जित, हास्य से वर्जित और आगमानुकूल बोलने में कुशल होऊं। ये पांच सत्य महाव्रत की भावनाएँ हैं। इनसे युक्त के सत्यमहाव्रत निर्मल होता है।।३।।

तृतीय अचौर्य व्रत को आश्रित मैं पांच भावनाओं में तत्पर होता हूँ। वे भावनाएं ये हैं अदेहन अर्थात् कर्मवश जो मैंने देह का उपार्जन किया है, वह ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नहीं है। ऐसी भावना भाता हूँ। यहां पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान में अदेहन बन गया है। देह में ही अशुचित्व, अनित्यत्व आदि भावना है उसको भी भाता हूँ। परिग्रह में अवग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना भाता हूँ। भक्त, पान, आदि चतुर्विध आहार में सन्तुष्ट अर्थात् गृद्धि-रहित होता हूँ। इन भावनाओं को भाने वाले के तीसरा महाव्रत निर्मल होता है।।४।।

मैथुन से विरति लक्षण चतुर्थ ब्रह्मव्रत को मैं आश्रित हुआ हूँ मैं स्त्री कथा, स्त्री संसर्ग, स्त्रियों के साथ हास्य विनोद, स्त्रियों के साथ क्रीडन और उनके मुखादि अंगों का रागभाव से अवलोकन इन सब ब्रह्मचर्य के विघातकों में चूँकि नियम से स्थित हूँ इसलिए निवृत्त होता हूँ। इन भावनाओं से चतुर्थ व्रत निर्मल होता है।।५।।

परिग्रह से विरति लक्षण पंचम व्रताश्रित मैं दासी, दास आदि सचित्त द्रव्य में और धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्य में तथा वस्त्र, आभरण आदि बाह्य द्रव्य में और ज्ञानावरणादि आभ्यन्तर द्रव्य में तथा गृह क्षेत्र आदि अन्य सब परिग्रह से विरत होता हूँ। इस प्रकार की पाँच भावनाओं को भाने वाले के परिग्रह विरति व्रत निर्मल ठहरता है। (ये पाँचों व्रत प्रतिज्ञारूप हैं। क्योंकि अभिसन्धि-पूर्वक किया हुआ नियम व्रत होता है ऐसा कहा गया है)।।६।।

तत्त्वार्थसूत्र में २५ भावना का वर्णन निम्न प्रकार हैं—

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्[२]।।१।।

अर्थ—हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी) अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

---

१. यतिप्रतिक्रमण पृ. १५०-१५१। २. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-७ पृ. ८३-८४ सूत्र १ से ८ तक।

व्रत के कितने भेद हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती।।२।।

अर्थ—व्रत के दो भेद हैं–अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पाँच पापों का एकदेश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

व्रतों की स्थिरता के लिए क्या करना चाहिए ?

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।।३।।

अर्थ–उन व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक की पाँच–पाँच भावनाएं हैं। किसी वस्तु का बार–बार चिन्तन करना सो भावना है।

अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ कौनसी हैं?

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।।४।।

अर्थ–वचन गुप्ति, मनोगुप्ति, ईयासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपान भोजन (सूर्य के प्रकाश में देखकर खाना, पीना) ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ क्या हैं ?

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।।५।।

अर्थ–क्रोध, लोभ, भय, हास्य का त्याग करना और अनुवीचि भाषण (शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना) ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

अचौर्य व्रत की भावनाएँ कौन सी हैं ?

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च।।६।।

अर्थ–शून्यागार अर्थात् पर्वत, गुफा, नदी, तट आदि स्थानों में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् राजा आदि के द्वारा छुड़वाए हुए स्वामित्वहीन स्थानों में रहना, परोपरोधाकरण अर्थात् अपने स्थान में ठहरने से किसी को न रोकना, भैक्ष्य शुद्धि अर्थात् शास्त्रानुसार भिक्षा की शुद्धि रखना और सहधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनाएँ हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च।।७।।

अर्थ—स्त्री राग की कथा–कहानी सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पहले भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, कामवर्धक गरिष्ट भोजन का त्याग और अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

परिग्रह त्याग व्रत की भावनाएँ क्या हैं ?

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।।८।।

अर्थ—पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (इष्ट) विषय में राग तथा अमनोज्ञ (अनिष्ट) विषयों में द्वेष का त्याग करना, ये पाँच परिग्रहत्याग व्रत की भावनाएँ हैं।

भावार्थ—यहाँ श्री गौतमस्वामी की भावनाओं से अचौर्यव्रत व अपरिग्रह व्रत की भावनाओं में अन्तर है।

(13) सोलहकारण भावना

षट्खण्डागम ग्रन्थ में १६ भावनाओं के नाम का क्रम इस प्रकार है तथा इनके लक्षण भी इसी प्रकार लिए हैं—

कदिहि कारणेहिं जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति [१]?।।३९।।

सूत्रार्थ— कितने कारणों से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म को बांधते हैं ?।।३९।।

तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति।।४०।।

सूत्रार्थ—वहां इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म को बांधते हैं।।४०।।

मनुष्यगति में ही तीर्थंकर कर्म के बन्ध का प्रारम्भ होता है, अन्यत्र नहीं, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में 'वहां' ऐसा कहा गया है।

दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खण-लवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगपण्णदाए जधाथामे तधा तवे, साहूणं पासुअपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणदाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाइ अरहंतभत्तीइ बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पभावणदाए अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति।।४१।।

सूत्रार्थ—दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शील-व्रतों में निरतिचारता, छह आवश्यकों में अपरिहीनता, क्षण-लवप्रतिबोधनता, लब्धि-संवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुओं को प्रासुकपरित्यागता, साधुओं की समाधिसंधारणता, साधुओं की वैयाव्रत्ययोगयुक्तता, अरहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावनता और अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म को बांधते हैं।।४१।।

श्री उमास्वामी आचार्य ने निम्न प्रकार से सोलहकारण भावनाओं के नाम लिए हैं। वर्तमान में इन्हीं भावनाओं का क्रम प्रसिद्ध है—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्यागतपसी-साधुसमाधि-वैय्यावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य।।२४।।[२]

अर्थ—दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों में अतिचार न लगाना, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग और संवेग, यथाशक्तित्याग और तप, साधुसमाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवत्सलता इन १६ भावनाओं से तीर्थंकर नाम प्रकृति का आस्रव होता है।

विशेषार्थ—इन भावनाओं में दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना है। उसके अभाव में सबके अथवा यथासंभव हीनाधिक होने पर भी तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव नहीं होता और उसके रहते हुए अन्य भावनाओं के अभाव में भी तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव होता है।

---

१. षट्खण्डागम धवला पु. ८, पृ.-७६, ७८, ७९। २. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-६ सूत्र-२४।

षट्खंडागम ग्रन्थराज एवं तत्त्वार्थसूत्र में कथित सोलहकारण भावनाओं में अन्तर-

षट्खंडागम	तत्त्वार्थसूत्र
१. दर्शनविशुद्धता	१. दर्शनविशुद्धि
२. विनयसंपन्नता	२. विनयसंपन्नता
३. शीलव्रतों में निरतिचारता	३. शीलव्रतों में अनतिचार
४. छह आवश्यकों में अपरिहीनता	४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग
५. क्षणलवप्रतिबोधनता	५. संवेग
६. लब्धिसंवेगसंपन्नता	६. शक्तितस्त्याग
७. यथा शक्तितप	७. शक्तितस्तप
८. साधुओं को प्रासुक परित्यागता	८. साधुसमाधि
९. साधुओं की समाधिसंधारणता	९. वैयावृत्यकरण
१०. साधुओं की वैयावृत्ति योगयुक्तता	१०. अर्हद्भक्ति
११. अरिहंतभक्ति	११. आचार्यभक्ति
१२. बहुश्रुतभक्ति	१२. बहुश्रुतभक्ति
१३. प्रवचनभक्ति	१३. प्रवचनभक्ति
१४. प्रवचनवत्सलता	१४. आवश्यकअपरिहाणि
१५. प्रवचनप्रभावनता	१५. मार्गप्रभावना
१६. अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता	१६. प्रवचनवत्सलत्व

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं भाव कर्म औ द्रव्यकर्म, नो कर्म रहित शुद्धात्मा हूँ।
मैं अरस अगंध अरूपी हूं, स्पर्श रहित सिद्धात्मा हूँ।।
संस्थान शरीर वचन मन से, विरहित पुद्गल से भिन्न कहा।
मैं आयू श्वासोच्छ्वास रहित, जीवन औ मरण विविक्त रहा।।2।।

(14) द्वादशानुप्रेक्षा

श्री कुंदकुंददेव ने 'द्वादशानुप्रेक्षा' नाम से स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा, उसमें ९१ गाथायें हैं। इन्हीं आचार्य द्वारा विरचित मूलाचार में भी यही क्रम रखा है। इसमें द्वादशानुप्रेक्षा नाम से एक अधिकार लिया है इन ग्रन्थों में इसी क्रम से वर्णन है एवं टीकाकारों ने भी यही क्रम लिया है उनका क्रम देखिए—

द्वादशानुप्रेक्षा में बारह अनुप्रेक्षाओं के नाम—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो।।२।।[१]

अध्रुव, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधि इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करना चाहिये।।२।।

यही गाथा मूलाचार भाग १ और मूलाचार भाग २ में भी है—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्ण-संसारलोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोधिं च चिंतिज्जो[२]**।।४०३।।**

गाथार्थ—अध्रुव, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म, और बोधि इनका चिन्तवन करना चाहिए।।४०३।।

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोधिं च चिंतेज्जो।।६९४।।[३]

गाथार्थ—अध्रुव, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुभत्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म, और बोधि इनका चिन्तवन करें।।६९४।।

ज्ञानार्णव पुस्तक में बारह भावनाओं के क्रम में अन्तर है—

१. अनित्य, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. धर्म, ११. लोकभावना , १२. बोधिदुर्लभ भावना।[४]

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में बारह भावनाओं के नाम—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः[५]**।।७।।**

अर्थ—अनित्य, अशरण, संसार,, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म, इनके स्वरूप का चिन्तवन करना सो ये बारह भावनाएँ (अनुप्रेक्षाएँ) हैं।

वर्तमान में तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार ही १२ भावनाओं के क्रम प्रसिद्ध हैं।

---

१. कुन्दकुन्दभारती पृ. ३०९, द्वादशानुप्रेक्षा गाथा–२। २. मूलाचार भाग–१ पंचाचाराधिकार पृ. ३१७ गाथा ४०३। ३. मूलाचार भाग–२, द्वादशानुप्रेक्षाधिकार पृ. २ गाथा ६९४। ४. ज्ञानार्णव द्वितीय सर्ग पृ. १२ से ४५ तक। ५. तत्त्वार्थसूत्र पृ. १०५, अध्याय–९ सूत्र–७।

द्वादशानुप्रेक्षा के क्रम में अन्तर

श्री कुंदकुददेव कृत **मूलाचार एवं द्वादशानुप्रेक्षा में**	श्री शुभचन्द्राचार्य कृत **ज्ञानार्णव में**	श्री उमास्वामी कृत **तत्त्वार्थसूत्र में**
१. अध्रुव	अनित्य	अनित्य
२. अशरण	अशरण	अशरण
३. एकत्व	संसार	संसार
४. अन्यत्व	एकत्व	एकत्व
५. संसार	अन्यत्व	अन्यत्व
६. लोक	अशुचि	अशुचि
७. अशुचित्व	आस्रव	आस्रव
८. आस्रव	संवर	संवर
९. संवर	निर्जरा	निर्जरा
१०. निर्जरा	धर्म	लोक
११. धर्म	लोक	बोधिदुर्लभ
१२. बोधि	बोधिदुर्लभ	धर्म

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(6) अशुचि भावना

मलमूत्रद कोळे कोंपेयु कोनेयलि सुडुगाडिगे बलियागुवदु।
होलसिन देहव नंबिदेयादरे कर्मद कै मेलागुवदु।।
परिपरि परिमळ पाकव नेनेदरे नारुतलिरुवुदु शुचियिल्ला।
चिरत्रैरत्नामृतदलि तोळेदरे भवदलि खंडित रुचियिल्ला।।

यह शरीर मल, मूत्र आदि अशुचि पदार्थों का पिंड है इससे हमेशा दुर्गंध ही निकलती रहती है। चाहे जितना इसे नहलाओ, सुगंधित द्रव्य लगाओ पर वे भी अपवित्र हो जाते हैं। इस शरीर में स्थित आत्मा को तीन रत्न— रत्नत्रय से धोने पर यह पवित्र हो जाता है। ऐसी भावना भाने से शरीर से प्रेम नष्ट हो जाता है और रत्नत्रय में प्रीति उत्पन्न होती है जिससे इस नश्वर घृणित शरीर से ही आत्मा को अविनाशी पवित्र बनाया जाता है।

(15) दशलक्षण धर्म में सत्यधर्म और शौचधर्म

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में सत्य धर्म को पहले लिया है–

दसण्हं समणधम्माणं। दशानां श्रमणधर्माणामुत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यलक्षणानाम्[१]।

श्री कुंदकुंददेव कृत 'द्वादशानुप्रेक्षा' में 'सत्य' धर्म को पहले लिया है—

उत्तमखममद्दवज्जवसच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं बम्हा इदि दसविहं होदि[२]।।७०।।

उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमसत्य, उत्तमशौच, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये मुनिधर्म के दश भेद हैं।

'मूलाचार प्रदीप' ग्रन्थ में संस्कृत टीका में 'सत्य' धर्म को पहले लिया है–

अथ धर्मं प्रवक्ष्यामि दशभेदं सुखाम्बुधिम्। साक्षान्मुक्तिपरींगन्तुं पाथेयं पथि योगिनाम्।।५७।। आद्याक्षमोत्तमा श्रेष्ठं मार्दव चार्जवोत्तमम्। सत्यं शौचं महान् संयमस्तपस्त्यागसत्तमः।।५८।। आकिंचन्यं परं ब्रह्मचर्यं सल्लक्षणान्यपि। इमानि धर्ममूलानि श्रमणानां दशैव हि[३]।।५९।।

अथानंतर–अब आगे दश प्रकार के धर्मों का स्वरूप कहते हैं। ये दश प्रकार के धर्म मुनियों के लिये सुख के समुद्र हैं और मोक्षरूपी नगर में जाने के लिीए मार्ग का साक्षात् पाथेय हैं मार्ग व्यय है।।५७।। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य यह मुनियों के दश धर्म हैं और समस्त धर्मों का मूल हैं।।५८-५९।।

तत्त्वार्थवृत्ति-ग्रन्थ में 'सत्य' धर्म को पहले लिया है—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः[४]।।६।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।।६।।

पद्मनन्दिपंचविंशतिका ग्रन्थ के धर्मोपदेशामृत में दशलक्षण धर्म के कथन में मुद्रित प्रति पृ. ३५ से ४६ तक, श्लोक ८२ से १०६ तक में सत्य धर्म को पहले लिया है।

सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में 'शौचधर्म' को पहले लिया है।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः[५]।।६।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है।।६।।

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी-पृ. ९, १०। २. कुन्दकुन्दभारती पृ. ३२०। ३. मूलाचार प्रदीप पृ. ३७९, ३८०। ४. तत्त्वार्थवृत्ति-अध्याय ९ सूत्र-६ पृ. ६१२। ५. सर्वार्थसिद्धि अध्याय-९ सूत्र-६ पृ. ३२३।

तत्त्वार्थवृत्ति— श्री भास्करनन्दि विरचित में 'शौच' धर्म को पहले लिया है—

उत्तम क्षमामार्दवार्जवशौच–सत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः[१]।।६।।

सूत्रार्थ—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।

तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रंथ में 'शौच धर्म' पहले है।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः[२]।।६।।

सूत्रार्थ—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।

तत्त्वार्थसूत्र के वाचन में या कहीं पर भी प्रवचन में सत्य या शौच धर्म को पहले लेने में हठवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि दोनों ही पक्ष आगम में मान्य हैं।

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मेरा तनु जिन मंदिर उसमें, मन कमलासन शोभे सुन्दर।
उस पर मैं ही भगवान् स्वयं, राजित हूँ चिन्मय ज्योति प्रवर।।
मैं शुद्ध बुद्ध हूँ सिद्ध सदृश, कर्मांजन का कुछ लेप नहीं।
मैं स्वयं स्वयंभू परमात्मा, मेरा पर से संश्लेष नहीं।।1।।

१. तत्त्वार्थवृत्ति-(सुखबोध टीका) अध्याय ९ सूत्र-६ पृ. ५१२। २. तत्त्वार्थराजवार्तिक भाग २ पृ. ५४४, अध्याय ९–सूत्र ६।

(16) चौंतीस अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य

(तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से)

चउरंगुलंतराले उवरिं सिंहासणाणि अरहंता। चेट्ठंति गयणमग्गे लोयालोयप्पयासमत्तंडा[१]।। ८९५।।
णिस्सेदत्तं णिम्मलगत्तत्तं दुद्धधवलरुहिरत्तं। आदिमसंहडणत्तं समचउरस्संगसंठाणं।।८९६।।
अणुवमरूवत्तं णवचंपयवरसुरहिगंधधारित्तं। अट्ठुत्तरवरलक्खणसहस्सधरणं अणंतबलविरियं।। ८९७।।
मिदहिदमधुरालाओ साभावियअदिसयं च दसभेदं। एदं तित्थयराणं जम्मग्गहणादिउप्पण्णं।। ८९८।।
जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियराणा। णहगमणाणमहिंसा भोयणउवसग्गपरिहीणा।।८९९।।
सव्वाहिमुहट्ठियत्तं अच्छायत्तं अपम्हफंदित्तं। विज्जाणं ईसत्तं समणहरोमत्तणं सजीवम्हि।। ९००।।
अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा सयाइं सत्त तहा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ।।९०१।।
एदासुं भासासुं तालुवदंतोट्ठकंठवावारे। परिहरिय एक्ककालं भव्वजणे दिव्वभासित्तं।। ९०२।।
पगदीए अक्खलिओ संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि।
णिस्सरदि णिरुवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं।।९०३।।
सेसेसुं समएसुं गणहरदेविंदचक्कवट्टीणं। पण्हाणुरूवमत्थं दिव्वझुणी अ सत्तभंगीहिं।। ९०४।।

चौंतीस अतिशय एवं आठ प्रातिहार्य
(तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से)

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में श्री यतिवृषभाचार्य ने ३४ अतिशय एवं ८ प्रातिहार्य का वर्णन किया है—

लोक और अलोक को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान भगवान् अरहन्त देव उन सिंहासनों के ऊपर आकाशमार्ग में चार अंगुल के अन्तराल से स्थित रहते हैं।। ८९५।।

(१) स्वेदरहितता, (२) निर्मलशरीरता, (३) दूध के समान धवल रुधिर, (४) आदि का वज्रर्षभनाराचसंहनन, (५) समचतुरस्त्ररूप शरीर संस्थान, (६) अनुपमरूप, (७) नवचम्पक की उत्तम गन्ध के समान गन्ध का धारण करना, (८) एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना, (९) अनन्त बल-वीर्य और (१०) हित-मित एवं मधुर भाषण, ये स्वाभाविक अतिशय के दश भेद हैं। यह दशभेदरूप अतिशय तीर्थंकरों के जन्म ग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं।। ८९६-८९८।।

(१) अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तक सुभिक्षता, (२) आकाशगमन, (३) हिंसा का अभाव, (४) भोजन का अभाव, (५) उपसर्ग का अभाव, (६) सबकी ओर मुख करके स्थित होना, (७) छाया रहितता, (८) निर्निमेष दृष्टि, (९) विद्याओं की ईशता, (१०) सजीव होते हुए भी नख और रोमों का समान रहना, (११) अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्रभाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षरानक्षरात्मक

---

१. तिलोयपण्णत्ति-चतुर्थ महाधिकार पृ. २६२ से २६५ तक।

छद्दव्वणवपयत्थे पंचट्ठीकायसत्ततच्चाणि। णाणाविहहेदूहिं दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं।। ९०५।।
घादिक्खएण जादा एक्कारस अदिसया महच्छरिया। एदे तित्थयराणं केवलणाणम्मि उप्पण्णे।। ९०६।।
माहप्पेण जिणाणं संखेज्जेसुं च जोयणेसु वणं। पल्लवकुसुमफलद्धीभरिदं जायदि अकालम्मि।। ९०७।।
कंटयसक्करपहुदिं अवणेंतो वादि सुक्खदो वाऊ। मोत्तूण पुव्ववेरं जीवा वंट्टति मेत्तीसु।। ९०८।।
दप्पणतलसारिच्छा रयणमई होदि तेत्तिया भूमि। गंधोदकाइ वीरसइ मेघकुमारो य सक्कआणाए।।९०९।।
फलभारणमिदसालीजवादिसस्सं सुरा विकुव्वंति। सव्वाणं जीवाणं उप्पज्जदि णिच्चमाणंदं।। ९१०।।
वायदि विक्किरियाए वाउकुमारो य सीयलो पवणो। कूवतडायादीणिं णिम्मलसलिलेण पुण्णाणि।।९११।।
धूमुक्कपडणपहुदीहिं विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं। रोगादीणं बाधा ण होंति सयलाण जीवाणं।।९१२।।
जक्खिंदमत्थएसुं किरणुज्जलदिव्वधम्मचक्काणि। दट्ठूण संठियाइं चत्तारि जणस्स अच्छरिया।। ९१३।।
छप्पण चउदिसासुं कंचणकमलाणि तित्थकत्ताणं।
एक्कं च पायपीढं अच्चणदव्वाणि दिव्वविविधाणि।।९१४।।

भाषाएँ हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्यजनों को दिव्य उपदेश देना। भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्यध्वनि तीनों संध्या कालों में नव मुहूर्तों तक निकलती है और एक योजन पर्यन्त जाती है। इसके अतिरिक्त गणधर देव, इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। यह दिव्यध्वनि भव्य जीवों को छः द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है। इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं।।८९९-९०६।।

(१) तीर्थंकरों के माहात्म्य से संख्यात योजनों तक वन असमय में ही पत्र, फूल और फलों की वृद्धि से संयुक्त हो जाता है; (२) कंटक और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदायक वायु चलने लगती है, (३) जीव पूर्व बैर को छोड़कर मैत्री भाव से रहने लगते हैं, (४) उतनी भूमि दर्पणतल के सदृश स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है, (५) सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करता है, (६) देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्य को रचते हैं, (७) सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है, (८) वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है, (९) कूप और तालाब आदि निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं, (१०) आकाश धुआँ और उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है, (११) सम्पूर्ण जीवों को रोगादि की बाधाएँ नहीं होती हैं, (१२) यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है, (१३) तीर्थंकरों के चारों दिशाओं में (विदिशाओं सहित) छप्पन सुवर्णकमल एक पादपीठ और दिव्य एवं विविध प्रकार के पूजनद्रव्य होते हैं।।९०७-९१४।।

आठ प्रातिहार्यों का वर्णन

जेसिं तरूण मूले उप्पण्णं जाण केवलं णाणं। उसहप्पहुदिजिणाणं ते चिय असोयरुक्ख त्ति।। ९१५।।
णाग्गोहसत्तपण्णं सालं सरलं पियंगु तं चेव। सिरिसं णागतरू वि य अक्खा धूली पलास तेंदूवं।।९१६।।
पाडलजंबू पिप्पलदहिवण्णो णंदितिलयचूदा य। कंकल्लिचंपबउलं मेसयसिंगं धवं सालं।।९१७।।
सोहंति असोयतरू पल्लवकुसुमाणदाहि साहाहिं। लंबंतमालदामा घंटाजालादिरमणिज्जा।। ९१८।।
णियणियजिणउदएणं बारसगुणिदेहिं सरिसउच्छेहा। उसहजिणप्पहुदीणं असोयरुक्खा विरायंति।। ९१९।।
किं वण्णणेण बहुणा दट्ठूणमसोयपादवे एदे। णियउज्जाणवणेसुं ण रमदि चित्तं सुरेसस्स।। ९२०।।
ससिमंडलसंकासं मुत्ताजालप्पयाससंजुत्तं। छत्तत्तयं विरायदि सव्वाणं तित्थकत्ताणं।। ९२१।।
सिंहासणं विसालं विसुद्धफलिहोवलेहिं णिम्मविदं। वररयणणिकरखचिदं को सक्कइ वण्णिदुं ताणं।।९२२।।
णिब्भरभत्तिपसत्ता अंजलिहत्था पफुल्लमुहकमला। चेट्ठंति गणा सव्वे एक्केक्कं वेढिऊण जिणं।। ९२३।।
विसयकसायासत्ता हदमोहा पविस जिणपहूसरणं। कहिदुं वा भव्वाणं गहिरं सुरदुंदुही रसइ।। ९२४।।
रुणरुणरुणंतछप्पयछण्णा वरभत्तिभरिदसुरमुक्का। णिवडेंति कुसुमविट्ठी जिणिंदपयकमलमूलेसुं।। ९२५।।
भवसयदंसणहेदुं दरिसणमेत्तेण सयललोयस्स। भामंडलं जिणाणं रविकोडिसमुज्जलं जयइ।। ९२६।।
चउसट्ठिचामरेहिं मुणालकुंदेंदुसंखधवलेहिं। सुरकरपणच्चिदेहिं विज्जिज्जंता जयंतु जिणा।। ९२७।।

आठ प्रातिहार्यों का वर्णन

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक वृक्ष हैं।। ९१५।।

न्यग्रोध, सप्तपर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, फिर वही (प्रियंगु), शिरीष, नागवृक्ष, अक्ष (बहेड़ा), धूली (मालिवृक्ष), पलाश, तदू, पाटल, पीपल, दधिपर्ण, नन्दी, तिलक, आम्र, कंकेलि (अशोक), चम्पक, वकुल, मेषशृङ्ग, धव और शाल ये (१) अशोक वृक्ष लटकती हुई मालाओं से युक्त और घंटासमूहादिक से रमणीय होते हुए पल्लव एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं से शोभायमान होते हैं।। ९१६-९१८।। ऋषभादिक तीर्थंकरों के उपर्युक्त चौबीस अशोकवृक्ष बारह से गुणित अपने अपने जिन की ऊँचाई से युक्त होते हुए शोभायमान हैं।। ९१९।। बहुत वर्णन से क्या? इन अशोकवृक्षों को देखकर इन्द्र का भी चित्त अपने उद्यान वनों में नहीं रमता है।।९२०।।

(२) सब तीर्थंकरों के चन्द्रमण्डल के सदृश और मुक्ता समूहों के प्रकाश से संयुक्त तीन छत्र शोभायमान होते हैं।।९२१।।

(३) उन तीर्थंकरों का निर्मल स्फटिक पाषाणों से निर्मित और उत्कृष्ट रत्नों के समूह से खचित जो विशाल सिंहासन होता है, उसका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है।। ९२२।।

(४) गाढ़ भक्ति से आसक्त, हाथों को जोड़े हुए और विकसित मुखकमल से संयुक्त ऐसे सम्पूर्ण गण प्रत्येक तीर्थंकर को घेरकर स्थित रहते हैं।। ९२३।।

(५) विषय-कषायों में अनासक्त और मोह से रहित होकर जिनप्रभु के शरण में जाओ, ऐसा भव्य जीवों को कहने के लिए ही मानों देवों का दुंदुभी बाजा गम्भीर शब्द करता है।। ९२४।।

(६) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों के मूल में, रुण-रुण शब्द करते हुए भ्रमरों से व्याप्त और उत्तम भक्ति से युक्त देवों के द्वारा छोड़ी गई पुष्पवृष्टि गिरती है।। ९२५।।

(७) जो दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण लोगों को अपने सौ (सात) भवों के देखने में निमित्त है और करोड़ों सूर्यों के समान उज्ज्वल है ऐसा वह तीर्थंकरों का प्रभामण्डल जयवन्त होता है।। ९२६।।

(८) मृणाल, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सफेद तथा देवों के हाथों से नचाये गए (ढोरे गए) चौंसठ चामरों से वीज्यमान जिन भगवान् जयवन्त होवें।। ९२७।।

आदिपुराण में ३४ अतिशय एवं ८ प्रातिहार्यों का वर्णन—

जन्म के १० अतिशय[१]—

(१) पसीना रहित, (२) मलमूत्र रहित, (३) सुगन्धित शरीर, (४) शुभ लक्षणों से सहित (५) समचतुरस्र संस्थान (६) रुधिर श्वेत (७) वज्रवृषभनाराच संहनन (८) सुन्दरता (९) सौभाग्य (१०) मीठी वाणी।

केवलज्ञान के १० अतिशय—

(१) सौ-सौ योजन तक सुभिक्षता (२) आकाश में गमन (३) हिंसा का अभाव (४) कवलाहार का अभाव (५) उपसर्ग से रहित (६) सब विद्याओं के स्वामी (७) चतुर्मुख दिखना (८) छाया का अभाव (९) नेत्रों की अनुन्मेष वृत्ति (१०) नख-केश का नहीं बढ़ना।

देवकृत १४ अतिशय[२]—

(१) अर्धमागधी भाषा (२) आपस में मित्रता (३) वृक्षों को फूल फल अंकुरों से व्याप्त का दिया (४) पृथिवी मण्डल को दर्पण के आकार में परिवर्तित कर दिया (५) सुगन्धित, शीतल मन्द-मन्द वायु (६) पवनकुमार देवों द्वारा भूमि की निष्कंटकता (७) मेघकुमार जाति के देव द्वारा सुगन्धित जल की वर्षा (८) कमलों पर चरण कमल (९) दिशाओं की निर्मलता (१०) हजार आरे वाला देदीप्यमान धर्मचक्र (११) अष्टमंगलद्रव्य (१२) फहराती हुई ध्वजाओं का समूह (१३) दुंदुभि बाजों का मधुर तथा गम्भीर शब्द (१४) पुष्पों की वर्षा।

अष्ट प्रातिहार्य[३]—

(१) अशोक वृक्ष (२) चमरों के समूह (३) तीन छत्र (४) सिंहासन (५) देवों के द्वारा साढ़े बारह करोड़ दुन्दुभि आदि बाजे (६) गम्भीर दिव्य ध्वनि (ठौना) (७) देवों द्वारा पुष्पों की वर्षा (८) शरीर का प्रभामण्डल।

१-२-३. आदिपुराण भाग १ पृ. ५९७-५९८, ६३२, ५३४, ५९९।

नंदीश्वर भक्ति में ३४ अतिशय एवं ८ प्रातिहार्यों का वर्णन—

नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीरगौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्या-कृति-संहनने, सौरुप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम्[१]।।३८।।
अप्रमित-वीर्यता च, प्रियहित-वादित्व-मन्य-दमितगुणस्य।
प्रथिता दश संख्याताः, स्वतिशय-धर्माः स्वयंभुवो देहस्य।।३९।।
गव्यूतिशत-चतुष्टय-सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभावश-चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पंदश्च समप्रसिद्धनखकेशत्वं।
स्वतिशयगुणा भगवतो, घातिक्षयजा भवंति तेऽपि दशैव।।४१।।
सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्वजनता-विषया।
सर्वर्तुफलस्तवक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरुपरिणामा।।४२।।
आदर्शतल-प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य।।४३।।
मरुतोऽपि सुरभि-गंध-व्यामिश्रा योजनांतरं भूभागं।
व्युपशमितधूलिकंटक-तृणकीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति।।४४।।

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने नंदीश्वर भक्ति में ३४ अतिशयों व ८ प्रातिहार्यों का वर्णन किया है—

स्वेद रहित निर्मलता नित ही, क्षीर समान रुधिर उज्ज्वल।
उत्तम संस्थान संहननयुत, सुरभितदेह सुरूप सुभग।।३८।।
सहस आठ लक्षणयुत अतुलित, वीर्यसहित प्रियहित वादी।
अगणितगुणी स्वयंभू प्रभु के, ये दश अतिशय बड़भागी।।३९।।
कोस चार सौ तक सुभिक्षता, गगन गमन नहिं प्राणीवध।
भोजन अरु उपसर्ग नहीं है, सब विद्या ईश्वर चउमुख।।४०।।
छाया अरु टिमकार रहित हैं, नहिं नख-केश बढ़े प्रभु के।
घाति के क्षय से दश अतिशय, प्रगट हुए केवलिजिन के।।४१।।
अर्द्धमागधी भाषा होती, सब जन मैत्रीभाव सदा।
सब ऋतु के फलफूल खिलें, तरुलता सुशोभित हुए मुदा।।४२।।
पृथ्वी रत्नमयी दर्पणवत्, शोभित हुई चमकशाली।
परमानन्द करें सब जन को, मंद सुगंधित पवन चली।।४३।।
वायुकुमार सुगंधित वायू, से योजन तक पृथ्वी को।
धूलि कंटक तृण पत्थर से, रहित स्वच्छ कर दिया अहो।।४४।।

---

१. मुनिचर्या-नंदीश्वर भक्ति-पृ. ३४० से ३४४ तक।

तदनु स्तनितकुमारा, विद्युन्माला-विलास-हासविभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं, गंधोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः।।४५।।

वरपद्मरागकेसर-मतुलसुखस्पर्शहेममय-दलनिचयम्।
पादन्यासे पद्मं, सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति।।४६।।

फलभारनम्रशालिब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृतरोमांचा।
परिहृषितेव च भूमिस् -त्रिभुवन-नाथस्य वैभवं पश्यंती।।४७।।

शरदुदयविमल-सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलं।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति-जिह्मताभावं सद्यः।।४८।।

एतैतेति त्वरितं, ज्योति-र्व्यंतर दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम्।।४९।।

स्फुरदर-सहस्र-रुचिरं, विमलमहारत्न-किरण-निकरपरीतम्।
प्रहसितकिरण-सहस्र-द्युतिमंडल-मग्रगामि धर्मसुचक्रम्।।५०।।

इत्यष्टमंगलं च, स्वादर्शप्रभृति भक्ति-रागपरीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमाति-विशेषाः।।५१।।

मेघकुमार देव भी विद्युन्माला, की बहु शोभा से।
इन्द्राज्ञा से सुरभि सुगंधित, गंधोदक वृष्टी करते।।४५।।

जहाँ चरण प्रभु धरें वहाँ हैं, उत्तम स्वर्ण कमल खिलते।
आगे पीछे सात-सात, सौगंधित अतुल सुखद होते।।४६।।

शालि आदिक खेती के फल, भारों से झुकती पृथ्वी।
त्रिभुवनपति का वैभव लखकर, हर्षित हो रोमांच हुई।।४७।।

शरद ऋतु सम विमल सरोवर, सम निर्मल आकाश अहो।
सभी दिशाएँ तत्क्षण ही, तमरहित प्रकाशें सब थल को।।४८।।

आओ! आओ! देव! भवन, व्यंतर ज्योतिष वैमानिक सब।
इंद्राज्ञा से सभी तरफ से, त्वरित बुलावें सुरगण तब।।४९।।

हजार आरों से सुन्दर बहु, रत्न किरणयुत अति चमके।
रविमंडल को हंसने वाला, धर्मचक्र चलता आगे।।५०।।

इस विध मंगल आठ कहें, दर्पण आदिक अनुपम सुविशेष।
भक्तिराग युत देवेन्द्रों से, कल्पित बहुविध महा विशेष।।५१।।

वैडूर्यरुचिरविटप- प्रवालमृदुपल्लवोप-शोभितशाखः।
श्रीमानशोकवृक्षो, वरमरकतपत्र-गहन-बहलच्छायः।।५२।।
मंदारकुंदकुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।
समदभ्रमर-परीतैर्व्या-मिश्रा पतति कुसुम-वृष्टिर्नभसः।।५३।।
कटक-कटि-सूत्रकुंडल-केयूर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल दलाक्षौ, परिनिक्षिपतः सलीलचामर-युगलम्।।५४।।
आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकर-सहस्त्र-मपगतव्यवधानम्।
भामंडल-मविभावित-रात्रिंदिवभेद-मतितरा-माभाति।।५५।।
प्रबलपवनाभिघात-प्रक्षुभितसमुद्र-घोषमन्द्र-ध्वानम्।
दंध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्यदुंदुभिस्-तालसमं।।५६।।
त्रिभुवनपतितालांछन-मिंदुत्रयतुल्य-मतुलमुक्ताजालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्यविक्लृप्तदंड-मधिक-मनोज्ञम्।।५७।।
ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोत्रहृदय-हारिगंभीरः।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनित-मिव प्रविततान्त-राशावलयं।।५८।
स्फुरितांशु-रत्नदीधिति-परिविच्छुरिता मरेन्द्रचापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः, स्फटिकशिला-घटितसिंह-विष्टर-मतुलम्।।५९।।

वर मरकत पत्रों से छाया, युत प्रवाल मृदु कोपलयुत।
श्रीमत् तरु अशोक बहु शाखा-युत वैडूर्य तना संयुत।।५२।।
नील कमल मंदार कुंद, अरविन्द मालती वकुलादी।
भ्रमर सहित पुष्पों की सुन्दर, कुसुमवृष्टि नभ से होती।।५३।।
कुंडल कंकण कटीसूत्र, केयूर आदि भूषण भूषित।
कमल नेत्र वाले दो यक्ष, ढोरें चंवर सुलीलायुत।।५४।।
अकस्मात् युगपत् हजार रवि, सदृश सदा व्यवधान रहित।
रात्री दिन का भेद मिटाते, भामंडल अतिशय शोभित।।५५।।
प्रबल पवन से क्षुभित जलधि की, मंद्र ध्वनि के सदृश महान।
वीणा दुंदुभि ताल बांसुरी, वाद्यों का सुरदुंदुभि स्वान।।५६।।
तीन चंद्रवत् मुक्ताफलयुत, रुचिर दंड वैडूर्य रचित।
तीन छत्र तव त्रिभुवन प्रभुता, बतलाते हैं सदा प्रगट।।५७।।
दिव्यध्वनि तव इक योजन तक, हो गंभीर कर्ण मनहर।
सजलमेघ सम ध्वनि कर खिरती, व्याप्त किया सब दिश अंतर।।५८।।
रत्न किरण से चित्रित सुंदर, इंद्र धनुष छवि सिंहासन।
बना अतुल स्फटिक शिला से, मृगपति धृत सुंदर आसन।।५९।।

यस्येह चतुस्त्रिंशत्-प्रवरगुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुणमहते।।६०।।

जिनके ये चौंतिस गुण अतिशय, प्रातिहार्य लक्ष्मी हैं आठ।
उन त्रिभुवन परमेश्वर भगवन्, अर्हंत प्रभु को वंदूँ आज।।६०।।

बालविकास भाग-४ में पंचपरमेष्ठी के मूलगुण में अरिहंत के स्वरूप में ३४ अतिशयों एवं ८ प्रातिहर्यों नाम दिये हैं–

जो परम अर्थात् इन्द्रों के द्वारा पूज्य, सबसे उत्तम पद में स्थित हैं, वे परमेष्ठी कहलाते हैं। वे पाँच होते हैं— अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

अरिहंत का स्वरूप

जिनके चार घातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं, जिनमें ४६ गुण हैं और १८ दोष नहीं हैं, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।[१]

दोहा— चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंतचतुष्टय गुण सहित, छियालीसों पाठ।।१।।

३४ अतिशय + ८ प्रातिहार्य और + ४ अनंतचतुष्टय, ये अरिहंत के ४६ मूलगुण हैं। उत्तरगुण अनन्त हैं।

सर्व साधारण प्राणियों में नहीं पायी जाने वाली अद्भुत या अनोखी बात को अतिशय कहते हैं। इन ३४ अतिशयों में जन्म के १०, केवलज्ञान के १० और देवकृत १४ होते हैं।

जन्म के १० अतिशय —

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार।।
लक्षण सहसरु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराचजुत ये जनमत दस जान।।

अतिशय सुन्दर शरीर, अत्यन्त सुगंधित शरीर, पसीना रहित शरीर, मल-मूत्र रहित शरीर, हित-मित-प्रिय वचन, अतुल-बल, सफेद खून, शरीर में १००८ लक्षण, समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन ये १० अतिशय अरिहंत भगवान के जन्म से ही होते हैं।

केवलज्ञान के १० अतिशय —

योजन शत इक में सुभिख, गगन-गमन मुख चार।
नहिं अदया, उपसर्ग नहीं, नाहीं कवलाहार।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख-केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेष।।

---

१. बालविकास भाग-४ पृ. ७ से ९ तक।

भगवान के चारों ओर सौ-सौ योजन[१] तक सुभिक्षता, आकाश में गमन, एक मुख होकर भी चार मुख दिखना, हिंसा न होना, उपसर्ग नहीं होना, ग्रास वाला आहार नहीं लेना, समस्त विद्याओं का स्वामीपना, नख केश नहीं बढ़ना, नेत्रों की पलकें नहीं लगना और शरीर की परछाई नहीं पड़ना। केवलज्ञान होने पर ये दश अतिशय होते हैं।

देवकृत १४ अतिशय

देव रचित हैं चार दश, अर्ध मागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश।।
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभतैं जय-जय बान।।
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि।।
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार।।

भगवान की अर्ध-मागधी भाषा, जीवों में परस्पर मित्रता, दिशाओं की निर्मलता, आकाश की निर्मलता, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक ही समय में फलना-फूलना, एक योजन तक पृथ्वी का दर्पण की तरह निर्मल होना, चलते समय भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्ण कमल की रचना, आकाश में जय-जय शब्द, मंद सुगंधित पवन, सुगंधमय जल की वर्षा, पवन कुमार देवों द्वारा भूमि की निष्कंटकता, समस्त प्राणियों को आनन्द, भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना और आठ मंगल द्रव्यों का साथ रहना ये १४ अतिशय देवों द्वारा किये जाने से देवकृत कहलाते हैं और केवलज्ञान होने पर होते हैं।

आठ प्रातिहार्य —

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र शिर पर फिरें, भामंडल पिछवार।।
दिव्यध्वनी मुखते खिरें, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चमर जख, बाजें दुंदुभि जोय।।

भगवान के पास अशोक वृक्ष, रत्नमय सिंहासन, भगवान के सिर पर तीन छत्र, पीठ पीछे भामंडल, दिव्यध्वनि, देवों द्वारा पुष्प वर्षा, यक्षदेवों द्वारा चौंसठ चंवर ढोरे जाना और दुंदुभि बाजे बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं। विशेष शोभा की चीजों को प्रातिहार्य कहते हैं।

अनन्त चतुष्टय —

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दरश अनंत प्रमान।
बल अनंत अरिहंत सो, इष्टदेव पहिचान।।

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य ये चार अनंत चतुष्टय हैं अर्थात् भगवान के ये दर्शन-ज्ञानादि अन्त रहित होते हैं।

---

१. चार कोश का एक योजन, दो मील का एक कोश।

(17) आचार्यों के ३६ गुण

आचार्यों के विशेष गुण माने हैं। मूलाचार में देखिए—

संगहणुग्गहकुसलो सुत्तत्थविसारओ पहियकित्ती।
किरिआचरणसुजुत्तो गाहुय आदेज्जवयणो य।।१५८।।[१]

संगहणुग्गहकुसलो–संग्रहण संग्रह, अनुग्रहणमनुग्रह कोऽयोभेदो दीक्षादिदानेनात्मीयकरणं संग्रहः दत्तदीक्षस्य शास्त्रादिभिः संस्करणमनुग्रहस्तयोः कर्तव्ये ताभ्यां वा कुशलो निपुणः सुत्तत्थविसारओ–सूत्रं चार्थश्च सूत्रार्थौं तयोस्ताभ्यां वा विशारदोऽवबोधको विस्तारको वा सूत्रार्थविशारदः। पहिदकित्ती–प्रख्यातकीर्तिः। किरियाचरणसुजुत्तो–क्रिया त्रयोदशप्रकारा पंचनमस्कारावश्यकासिकानिषेधिकाभेदात्। आचरणमपि–त्रयोदशविधं पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिविकल्पात्। तयोस्ताभ्यां वा सुयुक्तः आसक्तः। क्रियाचरणसुयुक्तः। गाहुयं–ग्राह्यं। आदेज्जं–आदेयं। ग्राह्यं वचनं यस्यासौ ग्राह्यादेयवचनः। उक्तमात्रस्य ग्रहणं ग्राह्यं एवमेवैतदित्यनेन भावेन ग्रहणं, आदेयं प्रमाणीभूतम्।।१५८।।

पुनरपि–

गंभीरो दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो।
खिदिससिसायरसरसो कमेण तं कमेण तं सो दु संपत्तो।।१५९।।

वह आचार्य किन गुणों से युक्त होना चाहिए ? सो ही कहते हैं–

गाथार्थ—वह आचार्य संग्रह और अनुग्रह में कुशल, सूत्र के अर्थ में विशारद, कीत्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त क्रिया और चरित्र में तत्पर और ग्रहण करने योग्य तथा उपादेय वचन बोलने वाला होता है।।१५८।।

आचारवृत्ति—संग्रह और अनुग्रह में क्या अन्तर है ? दीक्षा आदि देकर अपना बनाना संग्रह है और जिन्हें दीक्षा आदि दे चुके हैं ऐसे शिष्यों का शास्त्रादि के द्वारा संस्कार करना अनुग्रह है अर्थात् दीक्षा आदि देकर शिष्यों को संघ में एकत्रित करना संग्रह है और पुनः उन्हें पढ़ा लिखाकर योग्य बनाना अनुग्रह है। इन संग्रह और अनुग्रह के कार्य में जो कुशल हैं, निपुण हैं वे 'संग्रहानुग्रहकुशल' कहलाते हैं। जो सूत्र और अर्थ में विशारद हैं, उनको समझाने वाले हैं अथवा उन सूत्र और अर्थ का विस्तार से प्रतिपादन करने वाले हैं व 'सूत्रार्थविशारद' कहलाते हैं। जिनकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है, जो पाँच नमस्कार, छह आवश्यक, आसिका और निषेधिका–इन तेरह प्रकार की क्रियाओं में तथा पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति इन तेरह प्रकार के चारित्र में सम्यक् प्रकार से लगे हुए हैं, आसक्त हैं तथा जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं, अर्थात् उक्त–कथित मात्र को ग्रहण करना ग्राह्य है जैसे कि गुरु ने कुछ कहा तो 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार के भाव से उन वचनों को ग्रहण करना ग्राह्य है और आदेय प्रमाणीभूत वचन को आदेय कहते हैं। जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं ऐसे उपर्युक्त सभी गुणों से समन्वित ही आचार्य होते हैं।

पुनरपि उनमें क्या क्या गुण होते हैं ?–

गाथार्थ—जो गंभीर हैं, दुर्धर्ष है, शूर हैं और धर्म की प्रभावना करने वाले हैं, भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश हैं इन गुण विशिष्ट आचार्य को वह मुनि क्रम से प्राप्त करता है।।१५९।।

---

१. मूलाचार पृ. १३३-१३४, श्लोक १५८।

भगवती आराधना में चार प्रकार से ३६ गुण माने हैं—

छत्तीसगुणसमण्णागदेण वि अवस्समेव कायव्वा।
परसक्खिया विसोधी सुट्ठुवि ववहारकुसलेण।।५२७।।[१]

'छत्तीसगुणसमण्णागदेव वि' षट्त्रिंशद्गुणसमन्वितेनापि। 'अवस्समेव होइ कायव्वा' अवश्यमेव भवति कर्तव्या। का ? 'विसोही' विशुद्धिः मुक्त्युपायातिचाराणामपाकृतिः।।५२७।।

आयारवमादीया अट्ठगुणा दसविधो य ठिदिकप्पो।
बारस तव छावासय छत्तीसगुणा मुणेयव्वा।।५२८।।

'सुट्ठवि ववहारकुसलेण' सुष्ठु अपि प्रायश्चित्तकुशलेनापि। अष्टौ ज्ञानाचाराः दर्शनाचाराश्चाष्टौ तपो द्वादशविधं, पंच समितयः, तिस्त्रो गुप्तयश्च षट्त्रिंशद्गुणाः।।५२८।।

गाथार्थ—छत्तीस गुणों के धारण और व्यवहार में कुशल आचार्य को भी अवश्य अन्य मुनि की साक्षी से अपने रत्नत्रय की विशुद्धि–अतिचारों को शोधन करना होता है। आठ ज्ञानाचार, आठ दर्शनाचार, बारह प्रकार का तप, पाँच समिति, तीन गुप्ति ये छत्तीस गुण है।।५२७।।

गाथार्थ—आचारवत्त्व आदि आठ गुण, दस प्रकार का स्थितिकल्प, बारह तप, छह आवश्यक ये छत्तीस गुण जानना चाहिए।।५२८

पं. आशाधर जी ने अपनी टीका में छत्तीस गुण संस्कृत टीका में विजयोदया के अनुसार बतलाकर प्राकृत टीका के अनुसार अट्ठाईस मूलगुण और आचारवत्व आदि आठ इस तरह छत्तीस बतलाए हैं। 'यदि वा' लिखकर दस आलोचना गुण, दस प्रायश्चित्त गुण, दस स्थितिकल्प, छह जीतगुण इस तरह छत्तीस गुण बतलाकर लिखा है।

कवि बुधजन कृत–

द्वादश तप दशधर्म जुत, पाले पंचाचार।
षट् आवश त्रयगुप्ति गुण, आचारज पदसार।।१९।।[२]

अनगारधर्मामृत में आचार्यों के ३६ गुण–

आचार्यस्य षट्त्रिंशतं गुणान् दिशति–

अष्टावाचारवत्त्वाद्यास्तपांसि द्वादश स्थितेः।
कल्पा दशाऽऽवश्यकानि षट् षट्त्रिंशद्गुणा गणेः।।७६।।[३]

भवन्ति । के ? गुणाः। कति ? षट्त्रिंशत्। कस्य ? गणेः।

''अनूचानः प्रवचने साङ्गेधीती गणिश्च स'' इति वचनाद्गणिरिव गणिराचार्यः, साङ्गप्रवचनाधीतित्वात्। गुरोरिति वा पाठः। के के भवन्ति तावद्गुणाः ? किंविशिष्ट ? आचारवत्त्वाद्याः। कति ? अष्टौ। आचारा अस्य सन्तीत्याचारवान्। तस्य भाव आचारवत्त्वम्। तदाद्यं येषामाधारवत्त्वादीनां त एवम्। तथा भवन्ति गुणाः। कानि ? तपांसि । कति ? द्वादश। तथा भवन्ति गुणाः। के ? कल्पा विशेषाः। कस्याः ? स्थिते-र्निष्टासौष्ठवस्य। कति ? दश। तथा भवन्ति। के ? गुणाः। कानि ? आवश्यकानि। कति ? षट्। एवं समुदिताः षटत्रिंशद्भवन्ति।

---

१. भगवती आराधना पृ. ३८८ गाथा- ५२७-४२८ तथा टीका से उद्धृत। २. इष्टछत्तीसी, बुधजन कविकृत। ३. अनगारधर्मामृत मूल पृ. ६७०, हिन्दी टीका-पृ. १०३-१०४।

आचार्यपदकी योग्यता सिद्ध करने वाले छत्तीस गुण कौन से हैं सो बताते हैं–

जो अङ्गसहित प्रवचन का मौनपूर्वक अध्ययन करता है उसको गणी कहते हैं। आचार्य भी अङ्गसहित प्रवचन के अध्येता हुआ करते हैं, अतएव उनको भी गणी कहते हैं। यहां पर "गणेः" इसकी जगह "गुरोः" ऐसा भी पाठ माना है। अर्थात् आचार्य-गणी-गुरु के छत्तीस विशेष गुण हैं। यथा—आचारवत्त्व, आधारवत्त्व आदि आठ गुण, और छह अन्तरङ्ग तथा छह बहिरङ्ग मिलाकर बारह प्रकार का तप तथा संयम के अन्दर निष्ठा के सौष्ठव–उत्तमता की विशिष्टता को प्रकट करने वाले आचेलक्य आदि दश प्रकार के गुण–जिनको कि स्थितिकल्प कहते है, और सामायिकादि पूर्वोक्त छह प्रकार के आवश्यक।

भावार्थ—आचारवत्वादि आठ, बारह तप, स्थितिकल्प दश और छह आवश्यक; इस प्रकार कुल मिलकर आचार्य के छत्तीस गुण माने हैं।

'दिगम्बर मुनि' पुस्तक में–आचार्य के ३६ गुण–

आचारवत्व आदि ८, १२ तप, १० स्थितिकल्प और ६ आवश्यक ये छत्तीस गुण होते हैं।[१]

बालविकास भाग ४ में आचार्य के ३६ मूलगुणों का वर्णन—

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

जो पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं और दूसरे मुनियों से कराते हैं, मुनि संघ के अधिपति हैं और शिष्यों को दीक्षा व प्रायश्चित्त आदि देते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी हैं। इनके ३६ मूलगुण होते हैं।

छत्तीस मूलगुण —

द्वादश तप, दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।
षट् आवश्यक, गुप्ति त्रय, आचारज गुणसार।।[२]

१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति ये आचार्य के ३६ मूलगुण हैं। उत्तर गुण अनेक हैं।

तप के नाम —

अनशन ऊनोदर करें, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, काय कलेश सुठोर।।
प्रायश्चित्त धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारि के, धरैं ध्यान मन लाय।।

अनशन (उपवास), ऊनोदर (भूख से कम खाना), व्रतपरिसंख्यान (आहार के समय अटपटा नियम), रसपरित्याग (नमक आदि रस त्याग), विविक्त शय्यासन (एकांत स्थान में सोना, बैठना), कायक्लेश (शरीर से गर्मी, सर्दी आदि सहन करना) ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त (दोष लगने पर दण्ड लेना), विनय (विनय करना), वैयावृत्य (रोगी आदि साधु की सेवा करना), स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना) व्युत्सर्ग (शरीर से ममत्व

१. दिगम्बर मुनि पृ. ९२। २. बालविकास भाग ४ पृ. ९ से ११ तक।

छोड़ना) और ध्यान (एकाग्र होकर आत्मचिन्तन करना) ये छह अंतरंग तप हैं।

दस धर्म —

छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग।।

उत्तम क्षमा — क्रोध नहीं करना, **मार्दव** — मान नहीं करना, **आर्जव** — कपट नहीं करना, **सत्य** — झूठ नहीं बोलना, **शौच** — लोभ नहीं करना, **संयम** — छह काय के जीवों की दया पालना, पाँच इन्द्रिय और मन को वश करना, **तप** — बारह प्रकार के तप करना, **त्याग** — चार प्रकार का दान देना, **आकिंचन्य** — परिग्रह का त्याग करना और **ब्रह्मचर्य** — स्त्रीमात्र का त्याग करना।

आचार तथा गुप्ति—

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तिस गुणसार।।

दर्शनाचार — दोषरहित सम्यग्दर्शन, **ज्ञानाचार** — दोषरहित सम्यग्ज्ञान, **चारित्राचार** — निर्दोषचारित्र, **तपाचार** — निर्दोष तपश्चरण और **वीर्याचार** — अपने आत्मबल को प्रगट करना ये पाँच आचार हैं।

मनोगुप्ति — मन को वश में करना, **वचनगुप्ति** — वचन को वश में करना और **कायगुप्ति** — काय को वश में रखना ये तीन गुप्तियाँ हैं।

छह आवश्यक—

समता धर वंदन करें, नानाथुती बनाय।
प्रतिक्रमण, स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय।।

समता — समस्त जीवों पर समता भाव और त्रिकाल सामायिक, **वंदना** — किसी एक तीर्थंकर को नमस्कार, **स्तुति** — चौबीस तीर्थंकर की स्तुति, **प्रतिक्रमण** — लगे हुए दोषों को दूर करना, **स्वाध्याय** — शास्त्रों को पढ़ना और **कायोत्सर्ग** — शरीर से ममत्व छोड़ना और ध्यान करना ये छह आवश्यक हैं। (मूलाचार आदि में स्वाध्याय की जगह 'प्रत्याख्यान' नामक क्रिया है, जिसका अर्थ है कि आगे होने वाले दोषों का, आहार-पानी आदि का त्याग करना) यहाँ तक आचार्य के ३६ मूलगुण हुए।

(18) साधु के २८ मूलगुण
(अन्तर-ग्रंथों में)

मूलाचार में २८ मूलगुणों के नाम—

पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोओ[1]।।२।।
आचेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु।।३।।

अर्थ-पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, लोच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन और एकभक्त ये अट्ठाईस मूलगुण जिनेन्द्रदेव ने यतियों-मुनियों के लिए कहे हैं।।२-३।।

जिनसहस्रनाम स्तवन (पं. आशाधरविरचित) की प्रस्तावना में साधु परमेष्ठी के २८ मूलगुण भिन्न प्रकार से हैं[2]—

साधु परमेष्ठी के २८ गुण—

दस सम्यक्त्वगुण, मत्यादि पाँच ज्ञानगुण और तेरह प्रकार का चारित्र, ये साधु के २८ गुण माने गए हैं। इनमें से सम्यक्त्व के दस गुण इस प्रकार हैं—

(१) आज्ञा सम्यक्त्व (२) मार्ग सम्यक्त्व (३) उपदेश सम्यक्त्व (४) सूत्र सम्यक्त्व (५) बीज सम्यक्त्व (६) संक्षेप सम्यक्त्व (७) विस्तारसम्यक्त्व (८) अर्थ सम्यक्त्व (९) अवगाढ़ सम्यक्त्व (१०) परमावगाढ़ सम्यक्त्व।

मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानगुण तथा पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूप तेरह प्रकार का चारित्र इनका लक्षण सर्वविदित ही है।

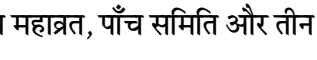

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं आधि व्याधि शोकादि रहित, मद मोह विषाद विवर्जित हूँ।
क्रोधादि कषायों से विरहित, विषयादिक सौख्य विवर्जित हूँ।।
मैं निर्मम हूँ एकाकी हूँ, मेरा अणुमात्र नहीं कुछ भी।
मैं ज्ञायक एक स्वभावी हूँ, पर में अनुराग नहीं कुछ भी।।3।।

१. मूलाचार पूर्वार्ध पृ. ५। २. जिनसहस्रनाम (स्वोपज्ञ-विवृति-युत) भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित प्रस्तावना में पृ. ३९।

(19) श्रावक के बारह व्रत

श्री गौतमस्वामी व श्री कुंदकुंददेव के अनुसार १२ व्रत एक सदृश हैं। पंच अणुव्रत सभी में एक समान हैं। तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों में अंतर है। पाक्षिक प्रतिक्रमण में १२ व्रत का वर्णन देखिए—

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं साावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्व्दे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकदपरिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुवव्दाणि।[१]

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहां मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।
ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।
तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया, पर दारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या बस स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।
त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।

---

१. मुनिचर्या-पृ. २९१, २९२।

पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।

षट्प्राभृत ग्रंथ के चारित्र पाहुड़ में श्रावक के बारह व्रतों का वर्णन देखिए—

पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि संजमचरणं च सायारं[1]।।२२।।
पञ्चैवाणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि।।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारं।।२२।।

(पंचेवणुव्वयाइं) पंचैवाणुव्रतानि भवन्ति। (गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि) गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि। (सिक्खावय चत्तारि) शिक्षाव्रतानि। चत्वारि भवन्ति। (संजमचरणं च सायारं) संयमचरणं च सागारं भवति।

गाथार्थ—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारहव्रत गृहस्थ के संयमाचरण हैं।।२२।।

विशेषार्थ—पाँच पापों से विरत होना व्रत है। वह व्रत एक देश और सर्व देश की अपेक्षा दो प्रकार का होता है। लोक में जिन्हें पाप समझा जाता है ऐसे हिंसा आदि स्थूल पापों से विरत होने को अणुव्रत कहते हैं वे पाँच होते हैं। जो अणुव्रतों का उपकार करें उन्हें गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत तीन होते हैं। जिनसे मुनिव्रत धारण करने की शिक्षा मिले उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। सब मिलाकर गृहस्थ के बारह व्रत होते हैं।

पाँच अणुव्रत का वर्णन—

थूले तसकायवहे थूले मोसे तितिक्खथूले य।
परिहारो परपिम्मे परिग्गहारंभपरिमाणं।।२३।।
स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मूषायां तितिक्षास्थूले च।
परिहारः परप्रेम्णि परिग्रहारम्भपरिमाणम्।।२३।।

(थूले तसकायवहे) स्थूले त्रसकायवधे। परिहार इति शब्दश्चतुर्षु सम्बध्यते। (थूले मोसे) स्थूलमूषावादे परिहारः। (तितिक्खथूले य) तितिक्षास्थूले चौर्यस्थूले परिहारः। (परिहारो परपिम्मे) परिहारः क्रियते, कस्मिन्? परप्रेम्णि परदारे। परिग्गहारम्भपरिमाणं) परिग्रहाणां सुवर्णादीनामारम्भाणां सेवाकृषि-वाणिज्यादीनां परिमाणं क्रियते।

गाथार्थ—स्थूल त्रसवध, स्थूल असत्य कथन, स्थूल चोरी और परस्त्री का परिहार तथा परिग्रह और आरम्भ का परिमाण ये पाँच अणुव्रत हैं।।२३।।

विशेषार्थ—स्थूलरूप से त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत है। स्थूलरूप से असत्य कथन का त्याग करना सत्याणुव्रत है। स्थूलरूप से चोरी का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है। पर-प्रियाका त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है और सुवर्णादि परिग्रह तथा सेवा, खेती और व्यापार आदि का परिमाण परिग्रह परिमाणाणुव्रत है।।२३।।

---

१. षट्प्राभृत ग्रंथ में चारित्रपाहुड़-गाथा-२२ से २५ तक।

तीन गुणव्रत का वर्णन—

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोग-परिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि।।२४।।
दिग्विदिग्माणं प्रथमं अनर्थदण्डस्य वर्जनं द्वितीयम्।
भोगोपभोग- परिमाणं इदमेव गुणव्रतानि त्रीणि।।२४।।

(दिसिविदिसिमाण पढमं) दिग्विदिङ्मानं परिमाणं प्रथमं गुणव्रतं ज्ञातव्यम्। (अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं) अनर्थदण्डस्य वर्जनं द्वितीयं गुणव्रतं भवति। (भोगोपभोग-परिमा) भोगोपभोगपरिमाणं तृतीयं गुणव्रतं भवति। भोजनादिकं भोगः। वस्त्रस्त्रीप्रमुखमुपभोग इत्यर्थः। (इयमेव गुणव्वया तिण्णि) इदमेवाचरणं त्रीणि गुणव्रतानि भवन्ति।।२४।।

गाथार्थ—दिशाओं और विदिशाओं का प्रमाण करना पहला गुणव्रत है। अनर्थदण्ड का त्याग करना गुणव्रत है और भोग तथा उपभोग का परिमाण करना तीसरा गुणव्रत है। इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।।२४।।

विशेषार्थ—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर ये चार दिशाएँ हैं तथा ऐशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व और अधो ये छह विदिशाएँ हैं इनमें आने जाने की सीमा निश्चित करना सो पहला दिग्व्रत नाम का गुणव्रत है। दूसरे गुणव्रत का नाम अनर्थदण्ड त्यागव्रत है इसमें अपध्यान, दुश्रुति, पापोपदेश, हिंसादान और प्रमादचर्या इन पाँच निरर्थक कार्यों का त्याग करना होता है। भागोपभोगपरिमाण नाम का तीसरा गुणव्रत है। जो वस्तु एक बार भोगने में आती है उसे उपभोग कहते हैं जैसे वस्त्र तथा स्त्री आदि। इनकी सीमाएँ निर्धारित करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। ये तीन गुणव्रत है।।२४।।

चार शिक्षाव्रतों का वर्णन—

सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।।२५।।
सामायिकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधो भणितः।
तृतीयमतिथि-पूज्यं चतुर्थं सल्लेखना अन्ते।।२५।।

(सामाइयं च पढमं) सामायिकं च प्रथमं शिक्षाव्रतं। चैत्यपञ्चगुरुभक्तिसमाधिलक्षणं दिनं प्रति एकबारं द्विवारं त्रिवारं वा व्रत-प्रतिमायां सामायिकं भवति। यत्तु सामयिकप्रतिमायां सामायिकं प्रोक्तं तत्त्रीन् वारान् निश्चयेन करणीयमिति ज्ञातव्यम्। (विदियं च तवेह पोसहं भणियं) द्वितीयं च तथैव प्रोषधोपवासं शिक्षाव्रतं भणितं प्रतिपादितं अष्टम्यां चतुर्दश्यां च। तदपि त्रिविधिं।, चतुर्विधाहारपरिवर्जनमृत्कृष्टं, जल-सहितं मध्यमं, आचाम्लं जघन्यं प्रोषधोपवासं भवति यथाशक्ति कर्तव्यम्। (तइयं च अतिहिपुज्जं) तृतीयं चातिथिपूज्यं, न विद्यते तिथिः प्रतिपदादिका यस्य सोऽतिथिः अथवा संयम-यात्रार्थमतति गच्छति उद्दण्डचर्यां करोतीत्यातिथिः यति स पूज्यो नव पुण्य-सप्तगुण-समन्वितेन श्रावकेण यस्मिन् शिक्षाव्रते तदथिति पूज्यं। (चउत्थ सल्लेहणा अन्ते) चतुर्थं शिक्षाव्रतमन्ते मरणकाले सल्लेखना कायकषायतनूकरणमिति तात्पर्यम्।।२५।।

गाथार्थ—पहला सामायिक, दूसरा प्रोषध, तीसरा अतिथि-पूज्य और चौथा मरणकाल में सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं।।२५।।

विशेषार्थ—सामायिक नामका पहला शिक्षाव्रत है। इसमें चैत्यभक्ति, पञ्चपरमेष्ठी भक्ति और समाधिभक्ति करना चाहिये। व्रत प्रतिमा में जो सामायिक होता है वह दिन में एक बार, दो बार अथवा तीन बार होता है। परन्तु सामायिक प्रतिमा में जो सामायिक कहा गया है, वह नियम से तीन बार करना चाहिये।

दूसरा शिक्षाव्रत प्रोषधोपवास कहा गया है। प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को यह व्रत करना पड़ता है। प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। अन्न-पान-खाद्य और लेह्य इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उत्कृष्ट प्रोषधोपवास है। जिसमें पर्व के दिन जल लिया जाता है, वह मध्यम प्रोषधोपवास है और जिसमें आचाम्लाहार किया जाता है वह जघन्य प्रोषधोपवास है।

तीसरा शिक्षाव्रत अतिथिपूज्य अथवा अतिथि-संविभाग है। जिसे प्रतिपदा आदि तिथियों का विकल्प न हो उसे अतिथि कहते हैं अथवा संयम की प्राप्ति के लिये जो भ्रमण करते हैं अर्थात् अनुद्दिष्ट आहार की प्राप्ति के लिये जो श्रावकों के घर चर्या करते हैं उन मुनियों को अतिथि कहते हैं। जिसमें नवधा[१] भक्ति और सात गुणों से सहित श्रावक के द्वारा उक्त अतिथि की पूजा की जाती है—उसे आहारादि से सन्तुष्ट किया जाता है, वह अतिथिपूज्य नाम का शिक्षाव्रत है।

चौथा शिक्षाव्रत सल्लेखना है। मरण समय काय और कषाय को कृश करना सल्लेखना है।

(गुणव्रत और शिक्षाव्रत के नामों में विभिन्न मत पाये जाते हैं। सर्वप्रथम कुन्दकुन्द स्वामी ने दिग्व्रत, अनर्थदण्ड त्यागव्रत और भोगोपभोगपरिमाण इन तीन को गुणव्रत माना है। इसी मत का उल्लेख समन्तभद्र स्वामी ने किया है परन्तु तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वामी ने दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड-त्यागव्रत को गुणव्रत माना है। प्रायः यही मान्यता उत्तरवर्ती आचार्यों ने स्वीकृत की है। श्री कुन्दकुन्द स्वामी के मतानुसार चार शिक्षाव्रतों के नाम इस प्रकार हैं—सामायिक-प्रोषधोपवास, अतिथि-संविभाग और सल्लेखना। समन्तभद्र स्वामी ने देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य को शिक्षाव्रत माना है। तथा उमास्वामी महाराज ने सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण और अतिथि-संविभाग को शिक्षाव्रत कहा है। कुन्दकुन्द स्वामी ने देशव्रत का उल्लेख गुणव्रतों में किया है और कुन्दकुन्द स्वामी की सल्लेखना को शिक्षाव्रत सम्बन्धी मान्यता अन्य आचार्यो को सम्मत नहीं हुई क्योंकि सल्लेखना मरणकाल में ही धारण की जा सकती है और शिक्षाव्रत सदा धारण करना पड़ता है। इस दृष्टि से अन्य आचार्यों ने सल्लेखना का बारह व्रत के अतिरिक्त वर्णन किया है। इसके स्थान पर उमास्वामी ने अतिथिसंविभाग को और समन्तभद्र स्वामी ने वैयावृत्य को शिक्षाव्रत स्वीकार किया है। वैयावृत्य शब्द अतिथि संविभाग का ही विस्तृत रूप है।)

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में गुणव्रत एवं शिक्षाव्रतों में अन्तर है इसमें सल्लेखना को अलग लिया है।

दिग्देशानर्थदण्डविरति-सामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणा-तिथिसंविभागव्रत-सम्पन्नश्च[२]।।२१।।

अर्थ—अणुव्रती को दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डत्यागव्रत (३ गुणव्रतों) और सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग-परिभोगपरिमाण और अतिथिसंविभागव्रत (ये चार शिक्षाव्रत) और पालने होते हैं।

---

१. प्रतिग्रह, उच्चासन, चरण प्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मन-वचन-काय-भोजन की शुद्धि। २. तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-७, पृ. ८९, सूत्र, २१-२२

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता।।२२।।

अर्थ—अव्रती को मरण के समय सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए। समतापूर्वक काय और कषाय को कृश करना सल्लेखना कहलाता है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों का वर्णन देखिए—

गुणव्रतों के नाम—दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च, भोगोपभोग-परिमाणं।
अनुवृंहणाद् गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः[१]।।६७।।

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

जो मूलगुणों को वृद्धिंगत, करते हैं औ दृढ़ करते हैं।
उनकी गुणव्रत ऐसी संज्ञा, श्रीगणधर देव उचरते हैं।।
दिग्व्रत, अनर्थदण्डनव्रत औ, भोगोपभोग परिमाण कहे।
इन तीनों व्रत को जो पालें, वे जग में अनुपम सौख्य लहें।।६७।।

अर्थ—जो मूलगुणों की वृद्धि करते हैं और और उन्हें दृढ़ करते हैं श्री गणधरदेव उन्हें गुणव्रत कहते हैं। उसके दिग्व्रत, अनर्थदण्डत्यागव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत भेद हैं। इन तीनों का जो पालन करते हैं वे जगत में अनुपम सुख को प्राप्त करते हैं।।६७।।

शिक्षाव्रत के भेद— देशावकाशिकं वा, सामायिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैय्यावृत्यं शिक्षा-व्रतानि चत्वारि शिष्टानि।।९१।।

शिक्षाव्रत चार कहे ये व्रत, मुनिव्रत की शिक्षा देते हैं।
जो इनको पालें वे श्रावक, बारह व्रत धारी होते हैं।।
देशावकाशि व्रत सामायिक, प्रोषध उपवास तृतिय जानो।
चौथा व्रत वैयावृत्य कहा, इनका पालन कर भव हानो।।९१।।

अर्थ—जो मुनिव्रत की शिक्षा देते हैं वे शिक्षाव्रत है। इनमें चार भेद होते हैं। देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य, इन व्रत को पालन करने वाले श्रावक बारह व्रतों के धारक हो जाते हैं।।९१।।

सल्लेखना (समाधिमरण) का लक्षण—

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचन-माहुः सल्लेखनामार्याः।।१२२।।

जिसका प्रतिकार न हो सकता, ऐसा उपसर्ग यदी आवे।
ऐसा अकाल पड़ जावे या, जर्जरित बुढ़ापा आ जावे।।
अथवा हो रोग असाध्य कठिन, जिससे नहिं धर्म की रक्षा है।
तब करिये सल्लेखना ग्रहण, जो धर्म हेतु तनु त्यजना है।।१२२।।

अर्थ—जिसको किसी उपाय से दूर नहीं किया जा सकता ऐसा उपसर्ग यदि आ जावे, ऐसा अकाल पड़

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, गाथा-६७, ९१, १२२।

जावे, जर्जरित बुढ़ापा आ जावे, या कठिन असाध्य रोग हो जावे, ऐसे समय में धर्म की रक्षा के लिए जो शरीर का त्याग किया जाता है उसका नाम सल्लेखना है।।१२२।।

हरिवंशपुराण में १२ व्रतों के वर्णन में शिक्षाव्रत में ही सल्लेखना को कहा है—

पञ्चधाणुव्रत प्रोक्तं त्रिविधिं च गुणव्रतम्। शिक्षाव्रतं चतुर्भेदं धर्मोऽयं गृहिणां स्मृतः[1]।।४५।।

हिंसादेर्देशतो मुक्तिरणुव्रतमुदीरितम्। दिग्देशानर्थदण्डेभ्यो विरतिश्च गुणव्रतम्।।४६।।

सामायिकं त्रिसंध्यं तु प्रोषधातिथिपूजनम्। आयुरन्ते च सल्लेखः शिक्षाव्रतमितीरितम्।।४७।।

गृहस्थों के लिए पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकार का धर्म कहा है।।४५।। हिंसादि पापों का एक देश छोड़ना अणुव्रत कहा गया है, दिशा, देश और अनर्थदण्डों से विरत होने को गुणव्रत कहते हैं और तीनों सन्ध्याओं में सामायिक करना, प्रोषधोपवास करना, अतिथि पूजन करना और आयु के अंत में सल्लेखना धारण करना इसे शिक्षाव्रत कहते हैं।।४६–४७।।

भावसंग्रह में श्रावक के १२ व्रतों का स्वरूप इस प्रकार हैं—

हिंसाविरई सच्चं अद्दत्तपरिवज्जणं च थूलवयं।
परमहिलापरिहारो परिदमाणं परिग्गहस्सेव।।३५३।।

अर्थ—त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना, सत्य बोलना, बिना दिये हुए पदार्थ को कभी ग्रहण न करना, परस्त्री सेवन त्याग और परिग्रह का परिमाण करना, ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं।

दिसिविदिसि पच्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो।
भोओपभोयसंखा ए एह गुणव्वया तिण्णि।।३५४।।

अर्थ—दिशा–विदिशाओं में आने जाने का नियम धारण कर उनकी सीमा नियत कर शेष दिशा–विदिशा में आने जाने का त्याग करना, पांचों प्रकार के अनर्थदंडों का त्याग करना, भोगोपभोग पदार्थों की संख्या नियत कर शेष भोगोपभोग पदार्थों का त्याग कर देना ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं।
अति हीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं[2]।।३५५।।

अर्थ—प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, संध्याकाल इन तीनों समय में पंचपरमेष्ठी की स्तुति करना, प्रत्येक महीने की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करना, प्रतिदिन अतिथियों को दान देना और सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। इस प्रकार पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह अणुव्रत कहलाते हैं।

१. हरिवंशपुराण सर्ग-१८, पृ. २६५। २. भावसंग्रह पृ. २२६ से २२८ तक।

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत में अन्तर

(भिन्न-भिन्न श्रावकाचारों में)

	ग्रंथ के नाम	रचयिता के नाम	तीन गुणव्रत के नाम
१.	पाक्षिक प्रतिक्रमण	गणधर श्रीगौतमस्वामी	१. दिग्विदिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत
२.	चारित्र पाहुड़	श्री कुन्दकुन्द स्वामी	१. दिग्विदिग्व्रत २. अनर्थदण्डत्यागव्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत
३.	रत्नकरण्डश्रावकाचार	आ. श्री समंतभद्र	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भागोपभोग परिमाण व्रत
४.	वरांगचरित गत श्रावकाचार	आ. जटासिंहनंदी कृत	१. दिग्व्रत २. भोगोपभोग संख्यान ३. अनर्थदण्डत्याग व्रत
५.	स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षागत श्रावकाचार	स्वामी कार्तिकेय	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरतिव्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत
६.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार	भट्टारक सकलकीर्ति	१. दिग्विरति २. अनर्थदण्डविरति ३. भोगोपभोग संख्यान
७.	श्रावकाचार सारोद्धार	श्री पद्मनन्दि मुनि	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग परिमाणव्रत
८.	रत्नमालागत श्रावकाचार	श्री शिवकोटि	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग संख्यान
९.	प्राकृत भावसंग्रह	श्री देवसेनसूरि	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग संख्यान।
१०.	भव्यमार्गोपदेश उपासकाध्ययन	श्री जिनदेव	१. दिग्व्रत २. भोगोपभोग संख्यान ३. अनर्थदंड त्यागव्रत
११.	सागारधर्मामृत	पं. आशाधर	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग परिमाणव्रत
१२.	पद्मचरितगत श्रावकाचार	आचार्य रविषेण	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरति व्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत
१३.	धर्मसंग्रह श्रावकाचार	पं. मेधावि	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डविरतिव्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत
१४.	उमास्वामी श्रावकाचार	आ. श्री समंतभद्र	१. दिग्व्रत २. अनर्थदण्डत्याग व्रत ३. भोगोपभोग परिमाण व्रत

१५.	वसुनन्दि श्रावकाचार	आ. श्री वसुनंदि	१. दिग्व्रत २.देशव्रत ३.अनर्थदण्डत्याग व्रत
१६.	अमितगति श्रावकाचार	आ. अमितगति	१. दिग्विरति २. देशविरत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
१७.	यशस्तिलकचंपूगत श्रावकाचार	श्री सोमदेव सूरि	१. दिग्विरति २. देशविरति ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
१८.	गुणभूषण श्रावकाचार	आ. गुणभूषण	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरतिव्रत
१९.	संस्कृत भावसंग्रह	श्री वामदेव	१. दिग्विरति २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डत्याग व्रत।
२०	व्रतोद्योतन श्रावकाचार	श्री अभ्रदेव	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२१.	तत्त्वार्थसूत्रगत उपासकाध्ययन		१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२२.	चारित्रसारगत	श्री चामुंडराय	१. दिग्विरति २. देशविरति ३. अनर्थदण्ड विरति
२३.	धर्मोपदेशपीयूषवर्ष श्रावकाचार	ब्र. नेमिदत्त	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२४.	लाटी संहिता	श्री राजमल्ल	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२५.	पद्मकृत श्रावकाचार		१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२६.	सुधर्म श्रावकाचार	आचार्य श्री सुधर्मसागर	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२७.	पूज्यपाद श्रावकाचार	आचार्य श्री पूज्यपाद	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२८.	लाटी संहिता	श्री राजमल्ल रचित	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
२९.	क्रियाकोष	किशनसिंह कृत	१. दिग्व्रत देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
३०.	क्रियाकोषपं.	दौलतराम कृत	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत
३१.	हरिवंशपुराण	जिनसेनाचार्य	१. दिग्व्रत २. देशव्रत ३. अनर्थदण्डविरति व्रत

	चार शिक्षाव्रत के नाम	ग्रंथ के नाम एवं पृष्ठ संख्या
१.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिसंविभाग ४. सल्लेखना	मुनिचर्या-पाक्षिक प्रतिक्रमण-पृ. २९१,२९२
२.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिसंविभाग ४.सल्लेखना	अष्टपाहुड़ (चारित्र पाहुड़) पृ. ८५ से ८८ तक।
३.	१. देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. वैयावृत्य	रत्नकरण्डश्रावकाचार पृ.३४, ४६
४.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिपूजन ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ४१८-४१९
५.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. देशावकाशिक	श्रावकाचार संग्रह भाग-१ पृ. २३ से २५
६.	१. देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. दान के साथ होने वाला वैय्यावृत्य	श्रावकाचार संग्रह भाग-२ पृ. ३२९ पृ. ३४१
७.	१. देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. अतिथिसंविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ३५७ से ३६० तक
८.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिपूजन ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ४११
९.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिसंविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ४४०
१०.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिसंविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ३९०, ३९१
११.	१. देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. अतिथिसंविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग-२ पृ. ४६ से ५२।
१२.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. ४१७।
१३.	१. देशावकाशिक २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग-२ पृ. १३१ से १३३।
१४.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग संख्यान ४. अतिथिसंविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग-३ पृ. १८४ से १८७
१५.	१. भोगविरति २. परिभोग निवृति ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग-१ पृ. ४४४, ४४५, ४५१
१६.	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग-१ पृ. ३१९ से ३२१

१७. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. दान	श्रावकाचार संग्रह भाग–१ पृ. १७०, १७१
१८. १. भोग संख्यान २. उपभोग संख्यान ३. पात्र सत्कार ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग–२ पृ. ४५०, ४५१
१९. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग संख्यान ४. अतिथि सत्कार	श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ. ४६६
२०. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ. २१६ से २१९
२१. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ. ४०८
२२. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. उपभोग परिभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–१ पृ. २४२
२३. १. सामायिक २. निर्जरा करने वाला सदा पर्वोपवास ३. भोगोपभोग की वस्तुओं की सदा सुखदायी संख्या ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–२ पृ. ४८३, ४८४।
२४. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोगपरिमाणव्रत ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ. १२३, १२९।
२५. १. भोग परिमाण व्रत २. उपभोग परिमाण ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	श्रावकाचार संग्रह भाग–५ पृ. ६१, ६३।
२६. १. भोगोपभोग संख्यान या परिमाण २. सामायिक ३. प्रोषधोपवास ४. वैय्यावृत्य	पृ २४४, २६३, २६४।
२७. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ. १९४
२८. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाणव्रत ४. अतिथि संविभाग।	श्रावकाचार संग्रह भाग–२ पृ. १२३, १२९
२९. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–५ पृ. १३४ से १४३ तक
३०. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. भोगोपभोग परिमाण ४. अतिथि संविभाग	श्रावकाचार संग्रह भाग–५ पृ. ३०९ से ३२०
३१. १. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिपूजन ४. सल्लेखना	हरिवंशपुराण सर्ग–१८ पृ. २६५

चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना

अनेक श्रावकाचारों में भी चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना को लिया है। प्रमाण देखिए—

वसुनन्दि श्रावकाचार में सल्लेखना का वर्णन—

धरिऊण वत्थमेत्तं परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं।
सगिहे जिणालए व तिविहाहारस्स वोसरणं[१]।।२७१।।
जं कुणइ गुरुसयासम्मि सम्ममालोइऊण तिविहेण।
सल्लेखणं चउत्थं सुत्ते सिक्खावयं भणियं।।२७२।।

अर्थ—वस्त्रमात्र परिग्रह को रखकर और अवशिष्ट समस्त परिग्रह को छोड़कर अपने ही घर में अथवा जिनालय में रहकर जो श्रावक गुरु के समीप में मन–वचन काय से अपनी भले प्रकार आलोचना करके पान के सिवाय शेष तीन प्रकार के आहार का त्याग करता है, उसे उपासकाध्ययन सूत्र में सल्लेखना नाम का चौथा शिक्षाव्रत कहा गया है।।२७१–२७२।।

गुणभूषण श्रावकाचार में सल्लेखना—

भोगस्य चोपभोगस्य संख्यानं पात्रसत्क्रिया।
सल्लेषणेति शिक्षाख्यं व्रतमुक्तं चतुर्विधम्[२]।।३५।।

अर्थ—भोग संख्यान, उपभोग संख्यान, पात्र–सत्कार और सल्लेखना नामक चार प्रकार का शिक्षाव्रत कहा गया है।।३५।।

श्री शिवकोटि विरचित रत्नमाला श्रावकाचार में सल्लेखना का वर्णन—

भोगोपभोगसंख्यानं शिक्षाव्रतमिदं भवेत्।
सामायिकं प्रोषधोपवासोऽतिथिषु पूजनम्[३]।।१७।।
मारणान्तिकसल्लेख इत्येवं तच्चतुष्टयम्।
देहिनः स्वर्गमौक्षैकसाधनं निश्चितक्रमम्।।१८।।

अर्थ—सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिपूजन और मारणान्तिकी सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे गए हैं। निश्चित क्रम वाले ये बारह व्रत प्राणी के स्वर्ग और मोक्ष के अद्वितीय स्थान है।।१७–१८।।

पद्मचरितगत श्रावकाचार में सल्लेखना का वर्णन—

सामायिकं प्रयत्नेन प्रोषधानशनं तथा।
संविभागोऽतिथीनां च सल्लेखश्चायुष क्षये[४]।।२०।।

अर्थ—प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास करना, अतिथियों को दान देना और आयु के अन्तकाल में सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं।।२०।।

श्री पद्मकृत श्रावकाचार में सल्लेखना का वर्णन—

---

१. श्रावकाचार संग्रह भाग–१ पृ. ४५१। २. श्रावकाचार संग्रह भाग–२ पृ. ४५१। ३. श्रावकाचार संग्रह भाग–३ पृ० ४११। ४. श्रावकचार संग्रह भाग–३ पृ. ४१७।

भोग्य वस्तु शिक्षा पहिलो ए, उपभोग्य दूजो होय तो।
अतिथि संविभाग तीजो व्रत ए, अंत संलेखना चौथो जाये तो[१]।।२।।

चार शिक्षाव्रत में सल्लेखना के प्रमाण अनेक श्रावकाचारों में

ग्रंथ के नाम	रचयिता के नाम	चार शिक्षाव्रत के नाम	पृष्ठ संख्या
१. पाक्षिक प्रतिक्रमण (मुनिचर्या)	श्री गौतम स्वामी	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	२९१, २९२
२. चारित्र पाहुड़ (अष्टपाहुड़)	श्री कुंदकुंद स्वामी	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	८५ से ८८ तक
३. वरांगचरितगत श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग३)	आ. जटासिंहनंदी	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि पूजन ४. सल्लेखना	४१८ –४१९
४. रत्नमालागत श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग–३)	श्री शिवकोटि	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि पूजन ४. सल्लेखना	४११
५. प्राकृत भावसंग्रह (श्रावकाचार संग्रह भाग–३)	श्री देवसेन सूरि	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	४४०
६. भव्य मार्गोपदेश उपासकाध्ययन (श्रावकाचार संग्रह भाग–३)	श्री जिनदेव	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	३९०, ३९१
७. पद्मचरितगत श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग–३)	आचार्य रविषेण	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	४१७
८. वसुनन्दि श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग–१)	आचार्य श्री वसुनंदि	१. भोग विरति २. परिभोग निवृति ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	४४४, ४४५ ४५१
९. गुणभूषण श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग-२)	आचार्य गुणभूषण	१. भोग संख्यान २. उपभोग संख्यान ३. पात्र सत्कार ४. सल्लेखना	४५०, ४५१
१०. व्रतोद्योतन श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग-३)	श्री अभ्रदेव	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	२१६ से २१९ तक
११. पद्मकृत श्रावकाचार (श्रावकाचार संग्रह भाग-५)		१. भोग परिमाण व्रत २. उपभोग परिमाण ३. अतिथि संविभाग ४. सल्लेखना	६१,६३
१२. हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य (सर्ग–१८)	श्री जिनसेनाचार्य	१. सामायिक २. प्रोषधोपवास ३. अतिथिपूजन ४. सल्लेखना	२६५

१. श्रावकचार संग्रह भाग–५ पृ. ६३।

(20) श्रावक के ४ धर्म

कसायपाहुड़ आदि ग्रन्थों में श्रावक के चार धर्म-कर्तव्य माने हैं—

''दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावयधम्मो।''[१]

अर्थात् दान, पूजा, शील और उपवास में चार श्रावकों के धर्म हैं।

रयणसार ग्रन्थ में श्री कुंदकुंददेव ने भी श्रावक के ४ धर्म बताए हैं—

दाणं पूया सीलं उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीहसंसारं[२]**।।१।।**

दानं पूजा शीलं उपवासः बहुविधमपि क्षपणमपि।
सम्यक्त्वयुतं मोक्षसुखं सम्यक्त्वं बिना दीर्घसंसारः।।१।।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन से युक्त मनुष्य के लिए दान, पूजा, शील, उपवास तथा अनेक प्रकार के व्रत कर्मक्षय के कारण तथा मोक्षसुख के हेतु हैं। सम्यग्दर्शन (विवेक की जाग्रति) के बिना ये ही दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

उमास्वामी श्रावकाचार में श्री उमास्वामी आचार्य ने श्रावकों की षट्क्रियायें मानी है—

देवपूजादिषट्कर्मनिरतः कुलसत्तमः।
आघषट्कर्मनिर्मुक्तः श्रावकः परमो भवेत्[३]**।।९४।।**

अर्थ—जो पुरुष देवपूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन छहों कर्मों के करने में तल्लीन रहता है, जिसका कुल उत्तम है और जो देवपूजा आदि कर्मों से ही चूला, उखली, चक्की, बुहारी, परण्डा, घर की मरम्मत, घर के नित्य होने वाले पापों को नष्ट करता रहता है वही उत्तम श्रावक कहलाता है।

भावार्थ—देवपूजा आदि श्रावकों का आवश्यक कर्म है। इस प्रकरण में ग्रंथकार ने 'कुलसत्तमः' ऐसा एक श्रावक का विशेषण दिया है। इससे यह सूचित होता है कि जिसकी कुल और जाति उत्तम है उसी को देवपूजा आदि षट्कर्म करने का अधिकार है। जिसकी जाति वा कुल हीन है उसको देवपूजा आदि करने का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, अपनी योग्यता के अनुसार ऐसे लोग दर्शन आदि कार्य कर सकते हैं।

अन्यत्र ग्रन्थों में श्रावकों की षट्क्रियायें मानी हैं—

१. देवपूजा २. गुरूपास्ति ३. स्वाध्याय ४. संयम ५. तप ६. दान।

पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका ग्रन्थ में श्रावकाचार अधिकार में श्रावकों के षट् आवश्यक कर्म बताए हैं–

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानञ्चेति गृहस्थाणां षट् कर्माणि दिने दिने[४]**।।७।।**

---

१. कषायपाहुड़ (जयधवला) पृ. १००। २. रयणसार पृ. ५५ गाथा-९। ३. उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ३५ श्लोक ९४। ४. पद्मनंदिपञ्चविंशतिका-पृ. १६४, श्लोक-७।

(21) गृहस्थ के ६ आर्यकर्म

आदिपुराण भाग २ में श्रावकों के ६ आर्यकर्म का वर्णन है–

इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः।
श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्यः समुपादिशत्।।२४।।

अर्थ—भरत ने उन्हें अर्थात् व्रती श्रावकों को उपासकाध्ययनांग से इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(8) संवर भावना

हडगिन रंध्रव मुच्चलु मनुजरु जलधिय दडवनु सेरुवरु।
कडेगाणद ई कर्मद रंध्रव तडयेलु संयमवेरुवरु।।
बा भव्यात्मने! नीनिरु चिरदिन व्रत समितिय पालनेयल्लि।
ई भाव दाटलु संवर भावने सततवु नेलसलि मनदल्लि।।

जहाज के छिद्रों को बंद करने से वह उसमें बैठने वालों को समुद्र के किनारे पहुँचा देता है वैसे ही कर्म के छिद्रों को रोकने के लिए संयम की आवश्यकता है। हे भव्यजीव! तुम हमेशा व्रत, समिति आदि के पालन करने में तत्पर होवो क्योंकि इस संसार को पार करने के लिए संवर भावना ही है, ऐसा तुम सतत मन में चिंतवन करते रहो।

संवर भावना को भाते रहने से आस्रव से भय होता है और संवर को प्राप्त करने की रुचि उत्पन्न होती है। यही इस भावना के चिंतन करने का अभिप्राय है।

---

१. आदिपुराण भाग-२ पर्व ३८, पृ. २४१, २४२।

(22) पूजा के प्रकार (भेद)

आदिपुराण में पूजा ४ प्रकार की बताई है[१]—

कुलधर्मोऽयमित्येषामर्हत्पूजादिवर्णनम्। तदा भरतराजर्षिरन्ववोचदनुक्रमात्[१]।।२५।।
प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनम्। चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमाश्राष्टाह्निकोऽपि च।।२६।।
तत्र नित्यमहो नाम शश्वज्जिनगृहं प्रति। स्वगृहान्नीयमानाऽर्चा गन्धपुष्पाक्षतादिका।।२७।।
चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च यत्। शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम्।।२८।।
या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यदानानुषङ्गिणी। स च नित्यमहो ज्ञेयो यथा शक्त्युपकल्पितः।।२९।।
महामुकुटबद्धैश्च क्रियमाणो महामहः। चतुर्मुखः स विज्ञेयः सर्वतोभद्र इत्यपि।।३०।।
दत्वा किमिच्छकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते। कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः।।३१।।
आष्टाह्निको महः सार्वजनिको रूढ एव सः। महानैन्द्रध्वजोऽन्यस्तु सुराजैः कृतो महः।।३२।।
बलिस्नपनमित्यन्यस्त्रिसंन्ध्यासेवया समम्। उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम्।।३३।।
एवंविधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम्। विधिज्ञास्तामुशन्तीज्यां वृत्तिं प्राथमकल्पिकीम्।।३४।।
वार्ता विशुद्धवृत्त्या स्यात् कृष्यादीनामनुष्ठितिः। चतुर्धा वर्णिता दत्तिर्दयापात्रसमान्वयैः।।३५।।

यह इनका कुलधर्म है ऐसा विचार कर राजर्षि भरत ने उस समय अनुक्रम से अर्हत्पूजा आदि का वर्णन किया।।२५।। वे कहने लगे कि अर्हन्त भगवान् की पूजा नित्य करनी चाहिए, वह पूजा चार प्रकार की है— **सदार्चन, चतुर्मुख, कल्पद्रुम और आष्टाह्निक**।।२६।। इन चारों पूजाओं में से प्रतिदिन अपने घर से गन्ध, पुष्प, अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालय में श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह कहलाता है।।२७।। अथवा भक्तिपूर्वक अर्हन्तदेव की प्रतिमा और मन्दिर का निर्माण कराना तथा दानपत्र लिखकर ग्राम, खेत आदि का दान देना भी सदार्चन (नित्यमह) कहलाता है।।२८।। इसके सिवाय अपनी शक्ति के अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियों की जो पूजा की जाती है उसे भी नित्यमह समझना चाहिए।।२९।। महामुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है उसे चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिए। इसका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है।।३०।। जो चक्रवर्तियों के द्वारा किमिच्छक (मुँहमाँगा) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत् के समस्त जीवों की आशाएँ पूर्ण की जाती हैं वह कल्पद्रुम नाम का यज्ञ कहलाता है।

भावार्थ—जिस यज्ञ में कल्पवृक्ष के समान सबकी इच्छाएँ पूर्ण की जावें उसे कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चक्रवर्ती ही कर सकते हैं।।३१।। चौथा आष्टाह्निक यज्ञ है जिसे सब लोग करते हैं और जो जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके सिवाय एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है।।३२।। बलि अर्थात् नैवेद्य चढ़ाना, अभिषेक करना, तीनों सन्ध्याओं में उपासना करना तथा इनके समान और भी जो पूजा के प्रकार हैं वे सब उन्हीं भेदों में अन्तर्भूत हैं।।३३।। इस प्रकार की विधि से जो जिनेन्द्रदेव की महापूजा की जाती है उसे विधि के जानने वाले आचार्य इज्या नामकी प्रथम वृत्ति कहते हैं।।३४।। विशुद्ध आचारणपूर्वक खेती आदि का करना वार्ता कहलाती है तथा दयादत्ति, पात्रदति, समदत्ति और अन्वयदत्ति ये चार प्रकार की दत्ति कही गयी है।।३५।।

---

१. आदिपुराण भाग-२ पर्व-३८ पृ. २४२, श्लोक २५ से ३५ तक।

'जैनभारती' ग्रन्थ में श्रावकों के पूजा के ५ भेदों का वर्णन[१]—

गृहस्थों के छह आर्यकर्म होते हैं—इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप।

इज्या—अरहंत भगवान् की पूजा को इज्या कहते हैं।

इज्या के पाँच भेद हैं—नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, आष्टान्हिक और ऐन्द्रध्वज।

नित्यमह—प्रतिदिन शक्ति के अनुसार अपने घर से गंध, पुष्प, अक्षत आदि ले जाकर अर्हंत की पूजा करना, जिनभवन, जिनप्रतिमा का निर्माण कराना, मुनियों की पूजा करना आदि।

चतुर्मुख—मुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे चतुर्मुख कहते हैं। इसी को ही महाभद्र और सर्वतोभद्र भी कहते हैं।

कल्पवृक्ष—समस्त याचकों को किमिच्छिक—इच्छानुसार दान देकर चक्रवर्ती द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे कल्पवृक्ष कहते हैं।

आष्टान्हिक—नन्दीश्वर पर्व के दिनों की पूजा को आष्टान्हिक पूजा कहते हैं।

ऐन्द्रध्वज—इन्द्र, प्रतीन्द्र आदि के द्वारा की गई पूजा ऐन्द्रध्वज कहलाती है।

शास्त्रसारसमुच्चय में पूजा के दश भेद बताए हैं[२] यथा—

१. देव-इन्द्रों द्वारा की जाने वाली अर्हंत की पूजा '**महाभद्र**' है।

२. इन्द्रों द्वारा की जाने वाली पूजा '**इन्द्रध्वज**' है।

३. चारों प्रकार के देवों द्वारा की जाने वाली पूजा '**सर्वतोभद्र**' है।

४. चक्रवर्ती द्वारा की जाने वाली पूजा '**चतुर्मुख**' है।

५. विद्याधरों द्वारा की जाने वाली पूजा '**रथावर्तन**' है।

६. महामण्डलीक राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा '**इन्द्रकेतु**' है।

७. मण्डलेश्वर राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा '**महापूजा**' है।

८. अर्धमण्डलेश्वर राजाओं द्वारा होने वाली पूजा '**महामहिम**' है।

९. नन्दीश्वर द्वीप में जाकर कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ में इन्द्रों द्वारा होने वाली पूजा '**आष्टान्हिक**' है।

१०. स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर अष्टद्रव्य से प्रतिदिन मंदिर में जिनपूजा करना '**दैनिक पूजा**' है।

मंदिर निर्माण, प्रतिष्ठा कराना, जीर्णोद्धार, मंदिर के लिए जमीन आदि का दान, पूजा के उपकरण आदि देना, सब दैनिक पूजा में सम्मिलित हैं और भी पूजन के बहुत से विशेष भेद होते हैं।

उमास्वामी श्रावकाचार में श्री उमास्वामी आचार्य ने लिखा है कि पूजा २१ प्रकार से भी की जाती है—

स्नानैर्विलेपनविभूषणपुष्पवास, धूपंप्रदीपफलतंदुलपत्रपूगैः।
नैवेद्यवारिवसतैश्चमरातपत्र, वादित्रगीतनटस्वास्तिककोशवृध्या[३]।।१३६।।
इत्येकविंशतिविधाजिनराजपूजा, यद्यत्प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम्।
द्रव्याणि वर्षाणि तथा हि कालाः, भावा सदा नैव समा भवन्ति।।१३७।।

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा इक्कीस प्रकार से की जाती है। आगे उन्हीं को बतलाते हैं।

---

१. जैनभारती पृ. १०६। २. शास्त्रसार समुच्चय पृ. २१५-२१६। ३. उमास्वामीश्रावकाचार पृ. ५४, श्लोक १३६, १३७।

१. पञ्चामृताभिषेक करना। २. चरणों पर चन्दन लगाना। ३. जिनालय को सुशोभित करना। ४. भगवान् के चरणों पर पुष्प चढ़ाना। ५. वास पूजा करना। ६. धूप से पूजा करना। ७. दीपक से पूजा करना। ८. अक्षतों से पूजा करना। ९. तांबूल पत्र से पूजा करना। १०. सुपारियों से पूजा करना। ११. नैवेद्य से पूजा करना। १२. जल से पूजा करना। १३. फलों से पूजा करना। १४. शास्त्र पूजा में वस्त्र से पूजा करना। १५. चमर ढुलाना। १६. छत्र फिराना। १७. बाजे बजाना। १८. भगवान् की स्तुति को गाकर करना। १९. भगवान् के सामने नृत्य करना। २० सांथिया करना। २१. और भण्डार में द्रव्य देना। इस प्रकार इक्कीस प्रकार की विधि से भगवान् की पूजा की जाती है। अथवा जिसको जो पसन्द हो उसी से भावपूर्वक भगवान् की पूजा करनी चाहिये। जैसे किसी को सितार बजाना पसन्द है तो उसको भगवान् के सामने ही सितार बजाना चाहिये। इसका भी कारण यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये सबके सदा समान नहीं रहते इसीलिये अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार भगवान् की पूजा सदा करते रहना चाहिये। बिना पूजा के अपना कोई समय व्यतीत नहीं करना चाहिये।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(9) निर्जरा भावना

बिसिलिगे नीरदु आरुव तेरदलि तपदलि कर्मवदारुवदु।
बसवळिदेल्लवु क्षण क्षण क्रमदलि आत्म प्रदेशदिं जारुवदु।।
मुंदिन कर्मव तडेयलु क्रमदिं मेल्लने ता बरिदागुवदु।
चेंददि चिन्तिप निर्जर भावने मुक्तियु बेगने तोरुवदु।।

जैसे सूर्य के आतप से सरोवर का जल सूख जाता है वैसे ही तपश्चर्या के द्वारा कर्मों को सुखाना चाहिए। आगे के आने वाले कर्म रुक गये और पुराने बंधे हुए झड़ते गये तो क्रम से सब कर्मों की निर्जरा होकर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा सतत चिन्तन करना निर्जरा भावना है।

यह निर्जरा भावना कर्मों से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्त कराने वाली है। इसके भाते रहने से आत्मा से कर्मों का भार हल्का होता है।

(23) सम्यग्दर्शन का लक्षण
(अन्तर-विभिन्न ग्रंथों में)

समयसार ग्रन्थ में श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने सम्यग्दर्शन का लक्षण लिखा है–

(१५ ज०) **भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।**
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं[1]।।१३ अ०।।
भूतार्थनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।१३।।

उत्थानिका—शुद्धनय से जानना ही सम्यक्त्व है, ऐसा सूत्रकार कहते हैं—

अन्वयार्थ—(भूतार्थेन अभिगताः जीवाजीवौ च पुण्यपापं च आस्रवसंवरनिर्जराः बंधः च मोक्षः सम्यक्त्वं) भूतार्थ से जाने हुये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नवतत्त्व ही सम्यक्त्व है।

नियमसार ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन का लक्षण—

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।।५।।[2]
आप्तागमतत्त्वानां श्रद्धानाद् भवति सम्यक्त्वम्।
व्यपगताशेषदोषः सकलगुणात्मा भवेदाप्तः।।५।।

पद्यानुवाद—गणिनी ज्ञानमती

सत्यार्थ आप्त आगम औ तत्त्व बताये। बस इनके हि श्रद्धान से सम्यक्त्व कहाये।।
संपूर्ण दोष रहित सकल गुण से युक्त जो। जो आत्मा है आप्त वीतराग द्वेष जो।।५।।

अन्वयार्थ—(अत्तागमतच्चाणं) आप्त, आगम और तत्वों के (सद्दहणादो सम्मत्तं हवेइ) श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। (ववगदअसेसदोसो) समस्त दोषों से रहित (सयलगुणप्पा) सकल गुणों से सहित आत्मा (अत्तो हवे) आप्त है।

स्याद्वादचन्द्रिका टीका—आप्त, आगम और तत्त्व, इनका श्रद्धान करना, इनमें रुचि, प्रतीति और विश्वास रखना ही सम्यग्दर्शन है। यह व्यवहार सम्यक्त्व का कथन है। इसके आधार से निश्चयनय से अपनी शुद्ध-बुद्ध परमानंदमय परमात्मा में रुचिरूप श्रद्धान होना निश्चयसम्यक्त्व है। यह साध्य है और व्यवहारसम्यक्त्व साधन है। इसीलिए यहाँ आचार्यदेव ने पहले व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप कहा है।

रयणसार ग्रंथ में सम्यग्दर्शन का लक्षण—

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लइ सो हु सद्दिट्ठी।।२।।[3]
पूर्वं जिनैः भणितं यथास्थितं गणधरैः विस्तरितं।
पूर्वाचार्यक्रमजं तत् कथयति सः खलु सद्दृष्टिः।।२।।

भावार्थ—जो व्यक्ति निश्चय से अतीत काल में सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए तथा गणधरों से विस्तृत एवं

---

१. समयसार पृ. ६३ श्लोक-१३। २. नियमसार पृ. १६ श्लोक-५। ३. रयणसार पृ. ४८ श्लोक-२।

पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त वचनों को ज्यों का त्यों कहता है वह सम्यग्दृष्टि है।

तत्त्वार्थसूत्र में श्री उमास्वामी आचार्य ने सम्यग्दर्शन का लक्षण लिखा है–

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्[१]।।२।।

अर्थ—तत्त्वार्थ अर्थात् तत्त्व और पदार्थों के यथावत् स्वरूप की श्रद्धा या रुचि को सम्यग्दर्शन कहते है।।

विशेषार्थ—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है–१. सराग सम्यग्दर्शन, २. वीतराग सम्यग्दर्शन।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से जिसका स्वरूप अभिव्यक्त होता है, वह सरागसम्यग्दर्शन है। रागादि की शान्ति प्रशम है। संसार से डरना संवेग है। प्राणिमात्र में मैत्रीभाव अनुकम्पा है। जीवादि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप में 'अस्ति' बुद्धि होना आस्तिक्य है, मोहनीय की ७ कर्म प्रकृतियों का अत्यन्त विनाश होने पर आत्मविशुद्धिरूप वीतराग सम्यक्त्व होता है। सराग सम्यक्त्व साधन ही होता है और वीतराग सम्यग्दर्शन साध्य भी है, साधन भी है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में सम्यग्दर्शन का लक्षण–

श्रद्धानं परमार्थाना - माप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ- मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्[२]।।४।।

पद्यानुवाद

परमार्थभूत जो आप्त और आगम औ मुनिगण होते हैं।
इनकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन, ये भवि का भव मल धोते हैं।।
मद आठ आठ शंकादि तीन मूढत्व अनायतनं छह हैं।
इनसे विरहित अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन ही शिवप्रद है।।४।।

अर्थ—सच्चे आप्त, आगम और मुनि, इनकी श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। ये भव्यों का भवमल धोने वाले हैं। आठ मद, शंकादि आठ दोष, तीन मूढ़ता और छह अनायतन इन पच्चीस दोषों से रहित और आठ अंग से सहित सम्यग्दर्शन ही मोक्ष को प्रदान करने वाला है।।४।।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में श्री अमृतचन्द सूरि ने श्रावकधर्म व्याख्यान में सम्यग्दर्शन का लक्षण लिखा है—

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्[३]।।२२।।

अन्वयार्था—(**जीवाजीवादीनां**) जीव अजीव आदिक (**तत्त्वार्थानां**) तत्त्वरूप पदार्थों का (**विपरीताभिनिवेशविविक्तम्**) विपरीत आग्रहरहित अर्थात् और का और समझनेरूप मिथ्याज्ञान से रहित (**श्रद्धानं**) श्रद्धान अर्थात् दृढ़ विश्वास (**सदैव**) निरन्तर ही (**कर्तव्यम्**) करना चाहिए, क्योंकि (**तत्**) वह श्रद्धान ही (**आत्मरूपं**) आत्मा का स्वरूप है।

भावार्थ—तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्व का लक्षण है और वह श्रद्धान 'सामान्यरूप' और 'विशेषरूप' दो प्रकार का है। परभावों से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को आपरूप श्रद्धान करना **सामान्यतत्त्वार्थश्रद्धान** है। यह

---

१. तत्त्वार्थसूत्र पृ. ९, अध्याय-१, सूत्र २। २. रत्नकरण्डश्रावकाचार पृ. ३ श्लोक-४। ३. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पृ. १३, श्लोक २२

नारक, तिर्यञ्चादिक समस्त सम्यग्दृष्टि जीवों के पाया जाता है और जीव-अजीवादिक सप्त तत्त्वों को विशेषता से जानकर श्रद्धान करना विशेष **तत्त्वार्थश्रद्धान** है। यह मनुष्य, देवादिक बहुश्रुत (विशेष ज्ञानी) जीवों के पाया जाता है।

'वसुनन्दिश्रावकाचार में सम्यक्त्व का लक्षण–

अत्तागमतच्चाणं जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
संकाइदोसरहियं तं सम्मत्तं मुणेयव्वं।।६।।[१]

श्लोकार्थ-आप्त (सत्यार्थ देव) आगम (शास्त्र) और तत्त्वों का शंकादि (पच्चीस) दोष-रहित जो अतिनिर्मल श्रद्धान होता है, उसे सम्यक्त्व जानना चाहिए।।६।।

बारह भावना

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

(10) लोक भावना

नलवत्तूरा मुन्नूरु रज्जुवु, घनलोकवु पुरुषाकारदलि।
अलेयुतलेम्भत्नाल्कु लक्षद, योनियु नानाकारदलि।।
तत्व बोधेयनु पडेयलिल्लवै, शान्तियु लेशवु सिगलिल्ला।
लोकान्त्यदलि निवासिसुववरिगे, चिरशान्तियु बहुस्थिरवेल्ला।।

यह लोक तीन सौ तेतालीस राजु प्रमाण घनरूप है, पुरुष के आकार का है। इसी में चौरासी लाख योनियों में अनेक आकार को धारण करके यह जीव घूम रहा है। तत्त्वज्ञान के बिना इस लोक में लेशमात्र भी शांति नहीं मिल सकती है। जो लोक के अग्रभाग में निवास कर रहे हैं ऐसे सिद्ध भगवान को ही पूर्ण शांति प्राप्त है, वे ही स्थिर पद पर निवास कर रहे हैं।

इस लोक भावना के बार-बार भाते रहने से यह जीव ऊर्ध्वलोक को प्राप्त करने का प्रयास करता है पुनः धीरे-धीरे लोक के अग्रभाग को प्राप्त कर लेता है।

---

१. वसुनन्दि श्रावकाचार, पृ. ७२।

(24) श्रावक के ८ मूलगुण

श्रावक के ८ मूलगुण होते हैं। इनके अनेक प्रकार हैं–

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में श्री अमृतचंदसूरि ने लिखा हैं–

मद्यं मांसं क्षौद्रं पञ्चोदुम्बरफलानि यत्नेन।
हिंसाव्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव[१]।।६१।।

अन्वयार्थौ—(हिंसाव्युपरतिकामैः) हिंसा त्याग करने की कामना वाले पुरुषों को **(प्रथममेव)** प्रथम ही **(यत्नेन)** यत्नपूर्वक **(मद्यं)** शराब, **(मांसं)** मांस, **(क्षौद्रं)** शहद और **(पंचोदुम्बरफलानि)** ऊमर, कठूमर, पीपल, बड़, पाकर ये पाँचों उदुम्बर फल **(मोक्तव्यानि)** छोड़ देने चाहिए।

उमास्वामी श्रावकाचार में श्री उमास्वामी आचार्य ने लिखा है–

मद्यं च पल क्षौद्रं च पंचोदुम्बरवर्जनम्।
व्रतं जिघृक्षुणा पूर्वं विधातव्यं प्रयत्नतः[२]।।२६३।।

अर्थ—व्रत धारण करने की इच्छा करने वाले भव्य जीवों को व्रत धारण करने से पहले मद्य, माँस और शहद तथा पांचों उदंबरों का त्याग प्रयत्नपूर्वक कर देना चाहिये।।

भावार्थ—मद्य, माँस और शहद का त्याग तथा पाँचों उदंबरों का त्याग आठ मूलगुण कहलाते हैं। मूलगुणों के धारण करने से व्रतों के धारण करने की योग्यता या पात्रता आ जाती है। बिना आठ मूलगुण धारण किये यह गृहस्थ श्रावक नहीं कहला सकता। इन आठ मूलगुणों को पाक्षिक श्रावक धारण करता है और व्रतों को नैष्ठिक श्रावक धारण करता है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में श्री समन्तभद्राचार्य ने श्रावकों के निम्न ८ मूलगुण बताए हैं–

मद्यमांसमधुत्यागैः, सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहु-र्गृहिणां श्रमणोत्तमाः[३]।।६६।।

पद्यानुवाद— मदिरा व मांस मधु त्याग और, पंचाणुव्रत पालन करना।
ये आठ मूलगुण गेही के, बचपन से ही धारण करना।।
जिस तरह मूल के बिन वृक्ष, नहिं हो सकता निश्चित जानो।
वैसे ही मूलगुणों के बिन, श्रावक नहिं हो सकता मानो।।६६।।

अर्थ—मदिरा, मांस और शहद का त्याग करके पाँच अणुव्रतों का पालन करना ये आठ मूलगुण हैं जो कि गृहस्थों के लिए कहे गए हैं। जिस प्रकार मूल—जड़ के बिना वृक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार इन मूलगुणों के बिना कोई भी मनुष्य श्रावक नहीं हो सकता है, ऐसा समझना।।६६।।

पं. श्री आशाधर जी ने सागार धर्मामृत में अष्टमूल गुण का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

---

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पृ. ३०, श्लोक ६१। २. उमास्वामीश्रावकाचार पृ. ९० श्लोक २६३। ३. रत्नकरण्डश्रावकाचार पृ. ३४ श्लोक-६६।

मद्यपलमधुनिशासन पंचफलीविरतिपंचकाप्तनुतिः।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः[1]।।१८।।

(१) मद्य (२) मांस (३) मधु (४) रात्रि भोजन ५. पंचउदम्बर फल इन पाँचों का त्याग और (६) जीवदया का पालन (७) जल छानकर पीना (८) पंचपरमेष्ठी को नमस्कार। ये आठ मूलगुण किसी शास्त्र में कहे हैं।।

सागारधर्मामृत में पण्डित प्रवर आशाधर जी ने और भी अनेक प्रकार से श्रावक के ८ मूलगुणों का वर्णन किया है एवं अन्य आचार्यों के मत से भी मूलगुणों का वर्णन किया है।

अथ स्वमतपरमताभ्यां मूलगुणान् विभजते–

अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूलवधादि वा।
फलस्थाने स्मरेत द्यूतं मधुस्थान इहैव वा[2]।।३।।

एतान्—उपासकाध्ययनादि शास्त्रानुसारिभिरस्माभिः पूर्वमनुष्ठेयतयोपदिष्टान्। उक्तं च यशस्तिलके–

'मद्यमांसमधुत्यागाः सहोदुम्बरपञ्चकैः।
अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते।। (सो. उपा. २७० श्लो.)

अब ग्रन्थकार अपने तथा अन्य आचार्यों के मत से मूलगुणों को कहते हैं—

आचार्य मद्य, मांस, मधु और पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को गृहस्थों के आठ मूलगुण मानते हैं। अथवा पाँच फलों के त्याग के स्थान में पाँच स्थूल हिंसा आदि के त्याग को गृहस्थों के मूलगुण कहते हैं। अथवा मद्य, मांस, मधु तथा पाँच स्थूल हिंसा आदि के त्यागरूप आठ मूलगुणों में ही मधु के स्थान में जुए के त्याग को आठ मूलगुण मानते हैं।।३।।

विशेषार्थ—आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने अपने श्रावकाचार के वर्णन में मूलगुण का कोई निर्देश नहीं किया। आचार्य श्री समन्तभद्र के रत्नकरण्ड श्रावकाचार में श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं। वे हैं–मद्य, मांस, मधु के त्याग के साथ पाँच अणुव्रत। इन्हीं को ग्रन्थकार ने 'वा' शब्द से सूचित किया है। इन्हीं अष्ट मूलगुणों में मधु के स्थान में जुआँ का त्यागकर मद्य, मांस और द्यूत तथा स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल अब्रह्म और स्थूल परिग्रह का त्याग ये आठ मूलगुण ग्रन्थकार ने महापुराण के मत से कहे हैं और प्रमाणरूप से श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु महापुराण के मुद्रित संस्करणों में वह श्लोक नहीं मिलता। चारित्रसार में यह श्लोक उद्धृत है और वह भी महापुराण नाम से ज्ञात होता है, पं. श्री आशाधरजी ने भी उसे वहीं से उद्धृत किया है। महापुराण में तो व्रतावतरण क्रिया में मधु-मांस के त्याग तथा पंच उदुम्बरों के त्याग और हिंसादि विरति को सार्वकालिक व्रत कहा है। मूलगुण का भी नाम नहीं है। न मधु के स्थान में जुए का ही त्याग कराया है। आगे जो पाँच अणुव्रतों के स्थान में पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को अष्ट मूलगुणों में लिया गया उसका प्रारम्भ महापुराण से ही हुआ प्रतीत होता है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथ में भी सर्वप्रथम हिंसा के त्यागी को मद्य, मांस, मधु और पाँच उदुम्बर फलों को छोड़ने का विधान है किन्तु उन्हें मूलगुण शब्द से नहीं कहा है। सबसे प्रथम पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में ही इन आठों में होने वाली हिंसा का स्पष्ट कथन मिलता है और इन्हें अनिष्ट, दुस्तर और पाप के घर कहा

१-२. सागार धर्मामृत (ज्ञानपीठ से प्रकाशित) पृ. ६३, ४२ से ४४।

है तथा यह भी कहा है कि इन आठों का त्याग करने पर ही सम्यग्दृष्टि जीव जिनधर्म की देशना का पात्र होते हैं। इसके बाद आचार्य सोमदेव ने अपने उपासकाचार में और आचार्य श्री पद्मनन्दि ने पञ्चविंशतिका में स्पष्टरूप से इन आठों के त्याग को मूलगुण कहा है और उन्हीं का अनुसरण आशाधर जी ने किया है। आचार्य श्री अमितगति ने जो आचार्य सोमदेव और श्री पद्मनन्दि के मध्य में हुए हैं, अपने श्रावकाचार में इन आठों के साथ रात्रि-भोजन का भी त्याग आवश्यक माना है किन्तु उन्हें मूलगुण शब्द से नहीं कहा। श्री देवसेन के भावसंग्रह में भी (गा. ३५६) अष्ट मूलगुण का निर्देश है। शिवकोटि की रत्नमाला में एक विशेषता है उसमें मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ पाँच अणुव्रतों को अष्ट मूलगुण कहा है और पाँच उदुम्बरों के त्यागवाले अष्ट मूलगुण को बालकों के कहा है। पं. श्री आशाधर के उत्तरकालीन मेधावी ने अपने श्रावकाचार में मद्यादि तीन तथा पाँच उदुम्बर फलों के सातिचार त्याग को अष्टमूलगुण कहा है। पं. राजमल्ल ने अपनी पंचाध्यायी के उत्तरार्ध में आठ मूलगुणों का कथन करते हुए उनके बारे में जो विशेष कथन किया है वह इस प्रकार है कि 'व्रतधारी गृहस्थों के आठ मूलगुण होते हैं, कहीं-कहीं अव्रतियों के भी होते हैं क्योंकि ये सर्वसाधारण है। ये आठ मूलगुण स्वभाव से या कुल परम्परा से चले आते हैं, इनके बिना न सम्यक्त्व होता है और न व्रत, इनके बिना जब जीव, नाम से भी श्रावक नहीं हो सकता तब पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक की तो बात ही क्या है। जिसने मद्य, मांस, मधु का और पाँच उदुम्बर फलों का त्याग कर दिया है वह श्रावक है, त्याग न करने पर वह श्रावक नहीं है।'

इस तरह विविध श्रावकाचारों में अष्ट मूलगुणों के सम्बन्ध में विवेचन मिलता है।

श्रावक के अष्ट मूलगुण

(अन्तर विभिन्न ग्रंथों में)

ग्रन्थ के नाम	अष्टमूलगुण
१.पुरुषार्थसिद्ध्युपाय–	१. मद्य २. मांस ३. मधु ४. ऊमर ५. कठूमर ६. पीपल ७. बड़ ८. पाकर, ये पाँचों उदुम्बर फल, इनका त्याग अष्ट मूलगुण है।
२. उमास्वामी श्रावकाचार–	मद्य, मांस, मधु एवं पाँचों उदुम्बर फल का त्याग
३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार–	मद्य, मांस, मधु का त्याग एवं पंचाणुव्रत का पालन अष्टमूल गुण है।
४. सागार धर्मामृत–	१. मद्य, मांस, मधु और पाँच उदुम्बर फलों का त्याग २. मद्य, मांस, मधु एवं पाँच स्थूल हिंसा आदि का त्याग ३. मद्य, मांस, मधु तथा पाँच स्थूल हिंसा आदि त्याग रूप आठ मूलगुणों में मधु के स्थान में जुए के त्याग को आठ मूलगुण मानते हैं। ४. १. मद्य २. मांस ३. मधु ४ रात्रि भोजन ५ पंचउदुम्बर फल इन पांचों का त्याग ६ जीवदया का पालन ७. जल छानकर पीना ८. पंचपरमेष्ठी को नमस्कार।

(25) धर्म का लक्षण

श्री गौतम गणधर स्वामी ने चैत्यभक्ति में धर्म का लक्षण कहा है—

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहित हेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।[1]

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

वीरभक्ति में धर्म का लक्षण—

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते। धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया। धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय[2]**।।७।।**

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दया धर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।

धम्मो मंगल मुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं) अहिंसा संयमो तवो। देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तपमय, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूँ धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में धर्म का लक्षण—

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदुः। यदीय-प्रत्यनी-कानि, भवन्ति भवपद्धति[3]**।।३।।**

सम्यग्दर्शन औ ज्ञान चरित, ये धर्म नाम से कहलाते।
धर्मेश्वर तीर्थंकर गणधर, इनको ही शिवपथ बतलाते।।
इनसे उल्टे मिथ्यादर्शन, औ मिथ्याज्ञान चरित्र सभी।
भव दुःखों के ही कारण हैं, नहिं हो सकते सुख हेतु कभी।।३।।

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन्हीं का नाम धर्म है। धर्म के स्वामी तीर्थंकर और गणधर इन्हें ही मोक्ष का मार्ग कहते हैं। इनसे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनों संसार दुख के कारण हैं ये कभी भी सुख के हेतु नहीं हो सकते हैं।।३।।

उमास्वामी श्रावकाचार में धर्म का लक्षण—

---

१. चैत्यभक्ति-श्लोक ६। २. वीरभक्ति, श्लोक-७, ८। ३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार पृ. २ श्लोक-३।

सम्यग्दृग्बोधवृत्तान्यविवित्तानि विमुक्तये। धर्मं सागारिणामाहुर्धर्मकर्मपरायणाः[१]।।४।।

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष का मार्ग है। धर्म कार्यों में अत्यन्त निपुण ऐसे गणधर देव इस रत्नत्रय को ही मोक्षमार्ग बतलाते हैं तथा यही रत्नत्रय एक देशरूप गृहस्थों का धर्म कहलाता है।

अष्टपाहुड़ ग्रंथ में दर्शन प्राभृत में धर्म का लक्षण—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं। तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो[२]।।२।।

दर्शनमूलो धर्म उपदिष्टो जिनवरैः शिष्याणाम्। तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः।।२।।

(दंसणमूलो धम्मो) दर्शनं सम्यक्त्वं मूलमधिष्ठानमाधारा प्रासादस्य गर्तापूरवत् वृक्षस्य पातालगत-जटावत् प्रतिष्ठा यस्य धर्मस्य स दर्शनमूल एवंगुणविशिष्टो धर्मो दयालक्षणः (जिणवरेहिं) तीर्थंकरपरम-देवैरपरकेवलिभिश्च (उवइट्ठो) उपदिष्टः प्रतिपादितः। केषामुपदिष्टः ? (सिस्साणं) शिष्याणां गणधर-चक्रधर-वज्रधरादीनां भव्यवरपुण्डरीकाणाम्। (तं सोऊण सकण्णे) तं धर्म श्रुत्वाऽऽकर्ण्य स्वकर्णे निजश्रवणे आत्मशब्दग्रहे। (दंसणहीणो ण वंदिव्वो) दर्शनहीनः सम्यक्त्वरहितो न वन्दितव्यो नैव वन्दनीयो न माननीयः। तस्यान्नदानादिकमपि न देयम्। उक्तं च—

मिथ्यादृग्भ्यो ददद्दानं दाता मिथ्यात्ववर्धकः।

गाथार्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने शिष्यों के लिये सम्यग्दर्शनमूलक धर्म का उपदेश दिया है, सो उसे अपने कानों से सुनकर सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य की वन्दना नहीं करना चाहिये।।२।।

विशेषार्थ—जिस प्रकार महल का मूल आधार नींव है और वृक्ष का मूल आधार पाताल तक गई हुई उसकी जड़ें हैं उसी प्रकार धर्म का मूल आधार सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना धर्मरूपी महल अथवा धर्मरूपी वृक्ष ठहर नहीं सकता है। जीवरक्षारूप आत्मा की परिणति को दया कहते हैं, वह दया ही धर्म का लक्षण है। तीर्थंकर परमदेव तथा अन्यान्य केवलियों ने अपने गणधर, चक्रवर्ती तथा इन्द्र आदि शिष्यों को धर्म का यही स्वरूप बताया है। इसे अपने कानों से सुनकर सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य को नमस्कार नहीं करना चाहिये। धर्म की जड़स्वरूप सम्यग्दर्शन ही जिसके पास नहीं है वह धर्मात्मा कैसे हो सकता है ? और जो धर्मात्मा नहीं है वह वन्दना या नमस्कार का पात्र किस तरह हो सकता है ? ऐसे मनुष्य को तो आहारदान आदि भी नहीं देना चाहिये, क्योंकि कहा है—

मिथ्येति—मिथ्यादृष्टियों के लिये दान देने वाला दाता मिथ्यात्व को बढ़ाने वाला है।

पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका ग्रन्थ में धर्मोपदेशामृत में धर्म चार प्रकार के माने है—

धर्मो जीवदया गृहस्थशमिनोर्भेदाद्द्विधा च त्रयं रत्नानां परमं तथा दशविधोत्कृष्टक्षमादिस्ततः।

मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागङ्गसङ्गोज्झिता शुद्धानन्दमयात्मनः परिणतिर्धर्माख्यया गीयते[३]।।७।।

अर्थ—समस्त जीवों पर दया करना इसी का नाम धर्म है अथवा एकदेश गृहस्थ का धर्म तथा सर्वदेश मुनियों का धर्म इस प्रकार उस धर्म के दो भी भेद हैं अथवा उत्कृष्ट रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्- चारित्र) ही धर्म है अथवा उत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव आदिक दश प्रकार भी धर्म है अथवा मोह से उत्पन्न हुवे समस्त विकल्पों कर रहित तथा जिसको वचन से निरूपण नहीं कर सकते ऐसी जो शुद्ध तथा आनन्दमय आत्मा की परिणति उसी का नाम उत्कृष्ट धर्म है इस प्रकार सामान्यतया धर्म का लक्षण तथा भेद इस श्लोक में बतलाये गये हैं।।७।।

---

१. उमास्वामी श्रावकाचार पृ. २ श्लोक-४। २. अष्टपाहुड़ में दर्शनप्राभृत पृ. ३ श्लोक-२। ३. पद्मनंदिपंचविंशतिका पृ. ५, श्लोक ७।

(26) वर्ष के ३६६ दिन

श्री गौतमस्वामी ने वर्ष के ३६६ दिन-रात्रि माने हैं। व्यवहार में ३६५ दिन-रात माने हैं।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में देखिए—

अह पडिवदाए विदिए तदिए चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए सत्तमीए अट्ठमीए णवमीए दसमीए एयारसीए वारसीए तेरसीए चउद्दसीए पुण्णमासीए पण्णरस दिवसाणं पण्णरस-राईणं, (चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तर-सयदिवसाणं वीसुत्तर-सयराईणं) (बारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्हं छावट्ठिसय-दिवसाणं तिण्हं छावट्ठि-सय-राईणं), (पंच वरिसादो)[1]।

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

अब एकम दूज तीज चौथी पंचमि छठ सप्तमि अष्टमि में।
नवमी दशमी ग्यारस बारस तेरस चौदश पूनम तिथि में।।
पन्द्रह दिन में पन्द्रह रात्री में दोष किये जो पाक्षिक में।
(चउमास के आठ पक्ष में एक सौ बीस दिवस अरु रात्री में)।।
(इक वर्ष में चौबिस पक्ष में त्रयशत छ्याछठ दिन अरु रात्रि में)।
(या पांच वर्ष के परे व अन्दर "युगप्रतिक्रमण" के करने में।।
हे भगवान् ! प्रतिक्रमण करके सब दोष विशोधन करता मैं।।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी ३६६ दिन माने हैं—

'एक वर्ष के तीन सौ छियासठ दिन-रात कहे जाते हैं[2]।

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं वीतमोह मैं वीतराग, मैं वीतद्वेष मैं भव विरहित।
मैं इन्द्रिय सुख औ दुःख रहित, मैं इन्द्रिय ज्ञान रहित हूँ नित।।
मैं सकल विमल केवलज्ञानी, परमाल्हादैक सुखास्वादी।
मैं चिन्मय मूर्ति अमूर्तिक हूँ, निज समरस भाव सुधास्वादी।।4।।

---

१. मुनिचर्या-पाक्षिकप्रतिक्रमण पृ. २८८-२८९। २. गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्णाटवृत्ति-संस्कृत टीका जीवतत्त्व प्रदीपिका, पृ. २५०

(27) संख्या का मान आगम में चौबीस अंक प्रमाण है

गणितसार संग्रह में २४ अंक प्रमाण माना है। देखिए–

एकं तु प्रथमस्थानं द्वितीयं दशसंज्ञिकम्। तृतीयं शतमित्याहुः चतुर्थं तु सहस्त्रकम्[१]।।६३।।
पञ्चमं दशसाहस्त्रं षष्ठं स्याल्लक्षमेव च। सप्तमं दशलक्षं तु अष्टमं कोटिरुच्यते।।६४।।
नवमं दशकोट्यस्तु दशमं शतकोटयः। अर्बुदं रुद्रसंयुक्तं न्यर्बुदं द्वादशं भवेत्।।६५।।
खर्वं त्रयोदशस्थानं महाखर्वं चतुर्दशम्। पद्मं पञ्चदशं चैव महापद्मं तु षोडशम्।।६६।।
क्षोणी सप्तदशं चैव महाक्षोणी दशाष्टकम्। शङ्खं नवदशं स्थानं महाशङ्खं तु विंशकम्।।६७।।
क्षित्यैकविंशतिस्थानं महाक्षित्या द्विविंशकम्। त्रिविंशकमथ क्षोभं महाक्षोभं चतुर्नयम्।।६८।।

प्रथम स्थान वह है जो एक (इकाई) कहलाता है, दूसरा स्थान दश (दहाई), तीसरा स्थान शत (सैकड़ा) और चौथा सहस्त्र (हजार) कहलाता है।।६३।। पाँचवा दस सहस्त्र (दस हजार), छठवाँ लक्ष (लाख), सातवाँ दशलक्ष (दस लाख) और आठवाँ कोटि (करोड़) कहलाता है।।६४।। नौवाँ दशकोटि (दस करोड़) और दसवाँ शतकोटि (सौ करोड़) कहलाता है। ग्यारहवाँ स्थान अरबुद (अरब) और बारहवाँ न्यर्बुद (दस अरब) कहलाता है।।६५।। तेरहवाँ स्थान खर्व (खरब) और चौदहवाँ महाखर्व (दस खरब) कहलाता है। इसी तरह, पंद्रहवाँ पद्म और सोलहवाँ महापद्म कहलाता है।।६६।। पुनः सत्रहवाँ क्षोणी, अठारहवाँ महाक्षोणी कहलाता है। उन्नीसवाँ स्थान शङ्ख और बीसवाँ महाशङ्ख कहलाता है।।६७।। इक्कीसवाँ स्थान क्षित्या, बाईसवाँ महाक्षित्या कहलाता है। तेईसवाँ क्षोभ और चौबीसवाँ महाक्षोभ कहलाता है।।६८।।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में संख्यात की संख्या को ९० शून्य अंक प्रमाण तक माना है—

समयावलिउस्सासा पाणा थोवा य आदिया भेदा। ववहारकालणामा णिद्दिट्ठा वीयराएहिं[२]।।२८४।।
परमाणुस्स णियट्टिदगयणपदेसस्सदिक्कमणमेत्तो। जो कालो अविभागी होदि पुढं समयणामा सो।।२८५।।
होंति हु असंखसमया आवलिणामो तहेव उस्सासो। संखेज्जावलिणिवहो सो चिय पाणो त्ति विक्खादो।।२८६।।

१। १। १।
२ ६

सत्तुस्सासो थोवं सत्तत्थोवा लवित्ति णादव्वो। सत्तत्तरिदलिदलवा णाली बे णालिया मुहुत्तं च।।२८७।।

७। ७। ७७। २।
१ १ २

समऊणेक्कमुहुत्तं भिण्णमुहुत्तं मुहुत्तया तीसं। दिवसो पण्णरसेहिं दिवसेहिं एक्कपक्खो हु।।२८८।।
दो पक्खेहिं मासो मासदुगेणं उडू उडुत्तिदयं। अयणं अयणदुगेणं वरिसो पंचेहिं वच्छरेहिं जुगं।।२८९।।
माघादी होंति उडू सिसिरवसंता णिदाघपाउसया। सरओ हेमंता वि य णामाइं ताण जाणिज्जं।।२९०।।
बेण्णि जुगा दस वरिसा ते दसगुणिदा हवेदि वाससदं। एदस्सिं दसगुणिदे वाससहस्सं वियाणेहि।।२९१।।

समय, आवलि, उच्छ्वास, प्राण और स्तोक, इत्यादिक भेदों को वीतराग भगवान ने व्यवहार काल के नाम

---

१. गणितसार संग्रह पृ. ८, श्लोक ६३ से ६८ तक। २. तिलोयपण्णत्ति पृ. १७६ से १७८ गाथा-२८४ से ३०९ तक।

से निर्दिष्ट किया है।।२८४।। पुद्गलपरमाणु का निकट में स्थित आकाशप्रदेश के अतिक्रमणप्रमाण जो अविभागी काल है वही 'समय' नाम से प्रसिद्ध है।।२८५।। असंख्यात समयों की आवलि और इसी प्रकार संख्यात आवलियों के समूहरूप उच्छ्वास होता है। यही उच्छ्वासकाल 'प्राण' इस नाम से प्रसिद्ध है।।२८६।। सात उच्छ्वासों का एक स्तोक, और सात स्तोकों का एक लव जानना चाहिये। सतत्तर के आधे अर्थात् साढ़े अड़तीस लवों की एक नाली और दो नालियों का एक मुहूर्त होता है।।२८७।। ७ उ. = १ स्तोक। ७ स्तोक = १ लव। ३८-१/२ लव = १ नाली। २ नाली = १ मुहूर्त। समय कम एक मुहूर्त को भिन्नमुहूर्त कहते हैं। तीस मुहूर्त का एक दिन और पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है।।२८८।। दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का वर्ष, और पांच वर्षों का एक युग होता है।।२८९।। माघ मास से लेकर जो ऋतुएँ होती हैं उनके नाम शिशिर, बसन्त, निदाघ (ग्रीष्म), प्रावृष (वर्षा), शरद और हेमन्त, इस प्रकार जानना चाहिये।।२९०।। दो युगों के दश वर्ष होते हैं ; इन दश वर्षों को दस से गुणा करने पर शतवर्ष और शतवर्ष को दश से गुणा करने पर सहस्रवर्ष जानना चाहिये।।२९१।।

दस वाससहस्साणिं वाससहस्सम्मि दसहदे होंति। तेहिं दसगुणिदेहिं लक्खं णामेण णादव्वं।।२९२।।
चुलसीदिहदं लक्खं पुव्वंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं णादव्वं पुव्वपरिमाणं।।२९३।।
पुव्वं चउसीदिहदं णिउदगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं णिउदस्स पमाणमुद्दिट्ठं।।२९४।।
णिउदं चउसीदिहदं कुमुदंगं होदि तं पि णादव्वं। चउसीदिलक्खगुणिदं कुमुदं णामं समुद्दिट्ठं।।२९५।।
कुमुदं चउसीदिहदं पउमंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदिलक्खवासे पउमं णामं समुद्दिट्ठं।।२९६।।
पउमं चउसीदिहदं णलिणंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदिलक्खवासे णलिणं णामं वियाणाहि।।२९७।।
णलिणं चउसीदिगुणं कमलंगं णाम तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं कमलं णामेण णिद्दिट्ठं।।२९८।।
कमलं चउसीदिगुणं तुडिदंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं तुडिदं णामेण णादव्वं।।२९९।।
तुडिदं चउसीदिहदं अडडंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं अडडं णामेण णिद्दिट्ठं।।३००।।

सहस्रवर्ष को दश से गुणा करने पर दश सहस्रवर्ष, और इनको भी दश से गुणा करने पर लक्षवर्ष जानना चाहिये।।२९२।। लक्षवर्ष को चौरासी से गुणा करने पर एक 'पूर्वाङ्ग', और इस पूर्वाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर एक 'पूर्व' का प्रमाण समझना चाहिये।।२९३।। पूर्व को चौरासी से गुणा करने पर एक 'नियुतांग' होता है और इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर एक 'नियुत' का प्रमाण कहा गया है।।२९४।। चौरासी से गुणित नियुतप्रमाण एक 'कुमुदांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'कुमुद' नाम कहा जानना चाहिए।।२९५।। चौरासी से गुणित कुमुदप्रमाण एक 'पद्मांग' होता है। इसको चौरासी लाख वर्षों से गुणा करने पर 'पद्म' नाम कहा गया है।।२९६।। चौरासी से गुणित पद्मप्रमाण एक 'नलिनांग' होता है। इसको चौरासी लाख वर्षो से गुणा करने पर 'नलिन' यह नाम जानना चाहिये।।२९७।। चौरासी से गुणित नलिनप्रमाण एक 'कमलांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'कमल' इस नाम से कहा गया है।।२९८।। कमल से चौरासी गुणा 'त्रुटितांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'त्रुटित' नाम समझना चाहिये।।२९९।। चौरासी से गुणित त्रुटितप्रमाण एक 'अटटांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणित होने पर 'अटट' इस नाम से कहा गया है।।३००।।

अडडं चउसीदिगुणं अममंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं अममं णामेण णिद्दिट्ठं।।३०१।।
अममं चउसीदिगुणं हाहंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं हाहाणामं समुद्दिट्ठं।।३०२।।
हाहाचउसीदिगुणं हूहंगं होदि तं पि गुणिदव्वं। चउसीदीलक्खेहिं हूहूणामस्स परिमाणं।।३०३।।
हूहूचउसीदिगुणं एक्कलदंगं हुवेदि गुणिदं तं। चउसीदीलक्खेहिं परिमाणमिदं लदाणामे।।३०४।।
चउसीदिहदलदाए महालदंगं हुवेदि गुणिदं तं। चउसीदीलक्खेहिं महालदाणाममुद्दिट्ठं।।३०५।।
चउसीदिलक्खगुणिदा महालदादो हुवेदि सिरिकप्पं। चउसीदिलक्खगुणिदं तं हत्थपहेलिदं णाम।।३०६।।
हत्थपहेलिदणामं गुणिदं चउसीदिलक्खवासेहिं। अचलप्पणाम चेओ कालं कालाणुवेदिणिद्दिट्ठं।।३०७।।
एक्कत्तीसट्ठाणे चउसीदिं पुह पुह ट्ठवेदूणं। अण्णोण्णहदे लद्धं अचलप्पं होदि णउदिसुण्णंगं।।३०८।।

८४। ३१। ९०।

एवं एसो कालो संखेज्जो वच्छराण गणणाए। उक्कस्सं संखेज्जं जावं तावं पवत्तेओ।।३०९।।

चौरासी से गुणित अटटप्रमाण एक 'अममांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'अमम' नाम से निर्दिष्ट किया गया है।।३०१।। चौरासी से गुणित अममप्रमाण एक 'हाहांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'हाहा' नामक कहा गया है।।३०२।। हाहाको चौरासी से गुणा करने पर एक 'हूहांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'हूहू' नाम काल का प्रमाण समझना चाहिये।।३०३।। चौरासी से गुणित हूहू का एक 'लतांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'लता' नामक प्रमाण उत्पन्न होता है।।३०४।। चौरासी से गुणित लताप्रमाण एक 'महालतांग' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'महालता' नाम कहा गया है।।३०५।। चौरासी लाख से गुणित महालताप्रमाण एक 'श्रीकल्प' होता है। इसको चौरासी लाख से गुणा करने पर 'हस्तप्रहेलित' नामक प्रमाण उत्पन्न होता है।।३०६।। चौरासी लाख वर्षों से गुणित हस्तप्रहेलितप्रमाण एक 'अचलात्म' नाम का काल होता है, ऐसा कालाणुओं के जानकार अर्थात् सर्वज्ञ भगवान् ने निर्दिष्ट किया है।।३०७।। इकतीस स्थानों में पृथक्-पृथक् चौरासी को रखकर परस्पर गुणा करने पर 'अचलात्म' का प्रमाण प्राप्त होता है, जो नब्बै शून्यांकरूप है।।३०८।। इस प्रकार यह संख्यात काल वर्षों की गणना द्वारा उत्कृष्ट संख्यात जब तक प्राप्त हो तब तक ले जाना चाहिये।।३०९।।

आदिपुराण में मनुओं की आयु अमम आदि की संख्या द्वारा बतलाई है देखिए—

यदायुरुक्तमेतेषाममम्मादिप्रसंख्यया। क्रियते तद्विनिश्चत्यै परिभाषोपवर्णनम्[१]।।२१७।।
पूर्वाङ्गं वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा। तद्वर्गितं भवेत् पूर्वं तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ।।२१८।।
पूर्वं चतुरशीतिघ्नं पूर्वाङ्गं परिभाष्यते। पूर्वाङ्गताडितं तत्तु पर्वाङ्गं पर्वमिष्यते।।२१९।।
गुणाकारविधिः सोऽयं योजनीयो यथाक्रमम्। उत्तरेष्वपि संख्यानविकल्पेषु निराकुलम्।।२२०।।
तेषां संख्यानभेदानां नामानीमान्यनुक्रमात्। कीर्त्यन्तेऽनादि सिद्धान्तपदरूढीनि यानि वै।।२२१।।
पूर्वाङ्गं च तथा पूर्वं पूर्वाङ्गं पर्वसाह्वयम्। नयुताङ्गं परं तस्मान्नयुतं च ततः परम्।।२२२।।
कुमुदाङ्गमतो विद्धि कुमुदाह्वमतः परम्। पद्माङ्गं च ततः पद्मं नलिनाङ्गमतोऽपि च।।२२३।।
नलिनं कमलाङ्गं च तथान्यत कमलं विदुः। तुट्यङ्गं तुटिकं चान्यदटटाङ्गमथाटटम्।।२२४।।
अममाङ्गमतो ज्ञेयममाख्यमतः परम्। हाहाङ्गं च तथा हाहा हूहूश्चैवं प्रतीयताम्।।२२५।।

---

१. आदिपुराण भाग १, पृ. ६५-६६, श्लोक २१७ से २२७ तक।

लताङ्गं च लताह्वं च महत्पूर्वं च तद्द्वयम्। शिरःप्रकम्पितं चान्यत्ततो हस्तप्रहेलितम्।।२२६।।
अचलात्मकमित्येवं प्रकारः कालपर्ययः। संख्येयो गणनातीतं विदुः कालमतः परम्।।२२७।।

इन मनुओं की आयु ऊपर अमम आदिकी संख्याद्वारा बतलायी गयी है इसलिए अब उनका निश्चय करने के लिए उनकी परिभाषाओं का निरूपण करते हें।।२१७।। चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। चौरासी लाख का वर्ग करने अर्थात् परस्पर गुणा करने से जो संख्या आती है उसे पूर्व कहते हैं (८४००००० × ८४००००० = ७०५६०००००००००) इस संख्या में एक करोड़ का गुणा करने से जो लब्ध आवे उतना एक पूर्व कोटि कहलाता है। पूर्व की संख्या में चौरासी का गुणा करने पर जो लब्ध हो उसे पर्वाङ्ग कहते हैं तथा पर्वाङ्ग में पूर्वाङ्ग अर्थात् चौरासी लाख का गुणा करने से पूर्व कहलाता है।।२१८-२१९।। इसके आगे जो नयुताङ्ग नयुत आदि संख्याएँ कही हैं उनके लिए भी क्रम से यही गुणाकार करना चाहिए।

भावार्थ—पर्व को चारौसी से गुणा करने पर नयुताङ्ग, नयुताङ्गको चौरासी लाख से गुणा करने पर नयुत; नयुत को चौरासी से गुणा करने पर कुमुदाङ्ग, कुमुदाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर कुमुद, कुमुद को चौरासी से गुणा करने पर पद्माङ्ग और पद्माङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर पद्म, पद्म को चौरासी से गुणा करने पर नलिनाङ्ग और नलिनाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने पर नलिन होता है। इसी प्रकार गुणा करने पर आगे की संख्याओं का प्रमाण निकलता है।।२२०।। अब क्रम से उन संख्या के भेदों के नाम कहे जाते हैं जो कि अनादिनिधन जैनागम में रूढ़ हैं।।२२१।। पूर्वाङ्ग, पूर्व, पर्वाङ्ग, पर्व, नयुताङ्ग, नयुत, कुमुदाङ्ग, कुमुद, पद्माङ्ग, पद्म, नलिनाङ्ग, नलिन, कमलाङ्ग, कमल, तुट्यङ्ग, तुटिक, अटटाङ्ग, अटट, अममाङ्ग, अमम, हाहाङ्ग, हाहा, हूहूङ्ग, हू हू, लतांग, लता, महालताङ्ग, महालता, शिरः प्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचल ये सब उक्त संख्या के नाम हैं जो कि कालद्रव्य की पर्याय हैं। यह सब संख्येय हैं—संख्यात के भेद हैं इसके आगे का संख्या से रहित है—असंख्यात है।।२२२-२२७।।

गणितसार संग्रह में संख्या इकाई–दहाई से लेकर महाक्षोभ तक २४ अंक प्रमाण मानी है। वर्तमान में व्यवहार में संख्या इकाई–दहाई से लेकर महाशंख तक १९ अंक प्रमाण मानी है। यहाँ गणितसार संग्रह की संख्या २४ अंक प्रमाण २४ तीर्थंकर की संख्या होने से बहुत ही प्रिय लगती है।

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं हूँ अपने में स्वयं सिद्ध, पर की भक्ती का काम नहीं।
मैं भक्त नहीं भगवान् स्वयं, मेरा निजपद शिवधाम सही।।
मैं हूँ अनंत गुणपुंज अतुल, अविनाशी ज्योति स्वरूपी हूँ।
मैं हूँ अखंड चिंपिंड परम आनंद सौख्य चिद्रूपी हूँ।।5।।

(28) सोलह स्वर्गों के इन्द्र

कल्पवासी देवों में १६ स्वर्गों के-१२ इंद्र, १४ इंद्र और १६ इंद्र माने हैं।

तिलोयपण्णत्ति में १२ इंद्र और १६ इंद्र दो प्रकार से माने हैं। यथा-

बारस कप्पा केई केई सोलस वदंति आइरिया। तिविहाणि भासिदाणिं कप्पातीदाणि पडलाणिं[१]।।११५।।

हेट्ठिम मज्झे उवरिं पत्तेक्कं ताण होंति चत्तारि। एवं बारसकप्पा सोलस उड्ढुड्ढमट्ठ जुगलाणिं।।११६।।

कोई आचार्य बारह कल्प और कोई सोलह कल्प बतलाते है।। कल्पातीत पटल तीन प्रकार कहे गये हैं।।११५।। जो बारह कल्प स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार अधो भाग, मध्य भाग और उपरिम भाग में से प्रत्येक में चार-चार कल्प हैं। इस प्रकार सब बारह कल्प होते हैं। सोलह कल्पों की मान्यतानुसार ऊपर-ऊपर आठ युगलों में सोलह कल्प हैं।।११६।।

सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबम्हलंतवया। महसुक्कसहस्सारा आणदपाणदयआरणच्चुदया।।१२०।।

सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतव, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इस प्रकार ये बारह कल्प हैं।।१२०।।

इसी तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में इंद्र जब नंदीश्वर की पूजा के लिए जाते हैं उस समय के प्रकरण में १४ इन्द्र माने हैं। यथा-

वरिसे वरिसे चउविहदेवा णंदीसरम्मि दीवम्मि। आसाढकत्तिएसुं फग्गुणमासे समायंति[२]।।८३।।

एरावणमारूढो दिव्वविभूदीए भूसिदो रम्मो। णालियरपुण्णपाणी सोहम्मो एदि भत्तीए।।८४।।

वरवारणमारूढो वररयणविभूसणेहिं सोहंतो। पूगफलगोच्छहत्थो ईसाणिंदो वि भत्तीए।।८५।।

वरकेसरिमारूढो णवरविसारिच्छकुंडलाभरणो। चूदफलगोच्छहत्त्वो सणक्कुमारो वि भत्तिजुदो।।८६।।

चारों प्रकार के देव नन्दीश्वरद्वीप में प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में आते हैं।।८३।। इस समय दिव्यविभूति से विभूषित रमणीय सौधर्म इन्द्र हाथ में नारियल को लिये हुए भक्ति से ऐरावत हाथी पर चढ़कर यहां आता है।।८४।। उत्तम हाथी पर आरूढ़ और उत्कृष्ट रत्न-विभूषणों से सुशोभित ईशान इन्द्र भी हाथ में सुपाड़ी फलों के गुच्छे को लिये हुए भक्ति से यहाँ आता है।।८५।। नवीन सूर्य के सदृश कुण्डलों से विभूषित और हाथ में आम्रफलों के गुच्छे को लिये हुए सनत्कुमार इन्द्र भी भक्ति से युक्त होता हुआ उत्तम सिंह पर चढ़कर यहां आता है।।८६।।

आरूढो वरतुरयं वरभूसणभूसिदो विविहसोहो। कदलीफलसहहत्थो माहिंदो एदि भत्तीए।।८७।।

हंसम्मि चंदधवले आरूढो विमलदेहसोहिल्लो। वरकेईकुसुमकरो भत्तिजुदो एदि बम्हिंदो।।८८।।

कोंचविहंगारूढो वरचामरविविहछत्तसोहिल्लो। पप्फुल्लकमलहत्थो एदि हु बम्हुत्तरिंदो वि।।८९।।

वरचक्काआरूढो कुंडलकेयूरपहुदिदिप्पंतो। सयवंतियकुसुमकरो सुक्किंदो भत्तिभरिदमणो।।९०।।

कीरविहंगारूढो महसुक्किंदो वि एदि भत्तीए। दिव्वविभूदिविभूसिददेहो वरविविहकुसुमदामकरो।।९१।।

णीलुप्पलकुसुमकरो कोइलवाहणविमाणमारूढो। वररयणभूसिदंगो सदरिंदो एदि भत्तीए।।९२।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति भाग-२ पृ. ७८६-७८७ गाथा-११५-११६, १२०। २. तिलोयपण्णत्ति भाग-२ पृ. ५४० से ५४२ गाथा ८६ से ९८ तक।

गरुडविमाणारूढो दाडिमफललुंबिसोहमाणकरो। जिणचलणभत्तिरत्तो एदि सहस्सारइंदो वि।।९३।।
विहगाहिवमारूढो पणसंफललुंबिलंबमाणकरो। वरदिव्वविभूदीए आगच्छदि आणदिंदो वि।।९४।।
पउमविमाणारूढो पाणदइंदो वि एदि भत्तीए। तुंबुरुफललुंबिकरो वरमंडणमंडियायारो।।९५।।
परिपक्कउच्छहत्थो कुमुदविमाणं विचित्तमारूढो। विविहालंकारधरो आगच्छदि आरणिंदो वि।।९६।।
आरूढो वरमोरं वलयंगदमउडहारसंजुत्तो। ससिधवलचमरहत्थो आगच्छदि अच्चुदाहिवई।।९७।।
णाणाविहवाहणया णाणाफलकुसुमदामभरिदकरा।
णाणविभूदिसहिदा जोइसवणभवण एंति भत्तिजुदा।।९८।।

उत्तम भूषणों से विभूषित और विविध प्रकार की शोभा को प्राप्त माहेन्द्र श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर हाथ में केलों को लिये हुए भक्ति से यहाँ आता है।।८७।। चन्द्र के समान धवल हंस पर आरूढ़, निर्मल शरीर से सुशोभित और भक्ति से युक्त ब्रह्मेन्द्र उत्तम केतकी पुष्प को हाथ में लेकर आता है।।८८।। उत्तम चँवर एवं विविध छत्र से सुशोभित और फूले हुए कमल को हाथ में लिये हुए ब्रह्मोत्तर इन्द्र भी क्रौंच पक्षी पर आरूढ़ होकर यहाँ आता है।।८९।। कुंडल एवं केयूर प्रभृति आभरणों से देदीप्यमान और भक्ति से पूर्ण मन वाला शुक्रेन्द्र उत्तम चक्रवाक पर आरूढ़ होकर सेवंती पुष्प को हाथ में लिये हुए यहाँ आता है।।९०।। दिव्य विभूति से विभूषित शरीर को धारण करने वाला तथा उत्तम एवं विविध प्रकार के फूलों की माला को हाथ में लिये हुए महाशुक्रेन्द्र भी तोता पक्षी पर चढ़कर भक्तिवश यहाँ आता है।।९१।। कोयल वाहन विमान पर आरूढ़, उत्तम रत्नों से अलंकृत शरीर से संयुक्त और नीलकमल पुष्प को हाथ में धारण करने वाला शतार इन्द्र भक्ति से प्रेरित होकर यहाँ आता है।।९२।। गरुड़विमान पर आरूढ़, अनार फलों के गुच्छे से शोभायमान हाथ वाला और जिनचरणों की भक्ति में अनुरक्त हुआ सहस्रार इन्द्र भी आता है।।९३।। विहगाधिप अर्थात् गरुड़ पर आरूढ़ और पनस अर्थात् कटहल फल के गुच्छे को हाथ में लिये हुए आनतेन्द्र भी उत्तम एवं दिव्य विभूति के साथ यहाँ आता है।।९४।। उत्तम आभरणों से मण्डित आकृति से संयुक्त और तुम्बरु फल के गुच्छे को हाथ में लिये हुए प्राणतेन्द्र भी भक्तिवश पद्म विमान पर आरूढ़ होकर यहाँ आता है।।९५।। पके हुए गन्ने को हाथ में धारण करने वाला और विचित्र कुमुद विमान पर आरूढ़ हुआ आरणेन्द्र भी विविध प्रकार के अलंकारों को धारण करके यहाँ आता है।।९६।। कटक, अंगद, मुकुट एवं हार से संयुक्त और चन्द्रमा के समान धवल चँवर को हाथ में लिये हुए अच्युतेन्द्र उत्तम मयूर पर चढ़कर यहाँ आता है।।९७।। नाना प्रकार की विभूति से सहित, अनेक फल व पुष्पमालाओं को हाथों में लिये हुए और अनेक प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ ज्योतिषी, व्यन्तर एवं भवनवासी देव भी भक्ति से संयुक्त होकर यहाँ आते हैं।।९८।।

त्रिलोकसार ग्रंथ में १२ इन्द्र माने हैं। यथा—

सोहम्मीसाणक्कुमारमाहिंदगा हु कप्पा हु। बह्मब्बह्मुत्तरगो लांतवकापिट्ठगो छट्ठो[1]।।४५२।।

सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रका हि कल्पा हि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरकौ लान्तवकापिष्टकौ षष्ठः।।४५२।।

सोहम्मी । सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रकाश्चत्वारः कल्पाः ब्रह्मब्रह्मोत्तरकौ द्वौ मिलित्वा एकेन्द्रापेक्षया एक कल्पः लान्तवकापिष्ठावपि तथा षष्ठकल्पः।।४५२।।

सुक्कमहासुक्कगदो सदरसहस्सारगो हु तत्तो दु। आणदपाणदआरणअच्चुदगा होंति कप्पा हु।।४५३।।

शुक्रमहाशुक्रगतः शतारसहस्रारगो हि ततस्तु। आनतप्राणतारणाच्युतगा भवन्ति कल्पा हि।।४५३।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ३९९ से ४०१ तक। गाथा ४५२ से ४५४ तक।

सुक्कमहा। शुक्रमहाशुक्रावपि तथा एकः कल्पः शतारसहस्त्रारकावपि तथैकः कल्पः। ततस्तु आनतप्राणतारणाच्युता इति चत्वारः कल्पा भवन्ति।।४५३।।

उन विमानों के कल्प और कल्पातीत स्वरूप दो भेद करके सर्वप्रथम कल्पों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :- सौधर्मैशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र (ये चार), ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर (पाँचवाँ), लान्तव-कापिष्ठ (छठा), शुक्र-महाशुक्र (सातवाँ), शतार-सहस्रार (आठवाँ), आनत-प्राणत, आरण और अच्युत (के एक-एक) कल्प होते हैं ।।४५२,४५३।।

विशेषार्थ :- सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इनके एक-एक इन्द्र हैं अतः ये चार कल्प हुए । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर दोनों का मिलकर एक इन्द्र है अतः यह एक ही (पाँचवाँ) कल्प हुआ । इसी प्रकार लान्तव-कापिष्ठ छठा, शुक्र-महाशुक्र सातवाँ और शतार-सहस्रार आठवाँ कल्प है क्योंकि इन दो-दो का मिलकर एक-एक ही इन्द्र होता है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये चार कल्प हैं, क्योंकि इनके एक-एक इन्द्र होते हैं।

इदानीमिन्द्रापेक्षया कल्पसंख्यामाह —

मज्झिमचउजुगलाणं पुव्वारजुम्मगेसु सेसेसु। सव्वत्थ होंति इंदा इदि बारस होंति कप्पा हु।।४५४।।

मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वापरयुग्मयोः शेषेषु। सर्वत्र भवन्ति इन्द्रा इति द्वादश भवन्ति कल्पा हि।।४५४।।

मज्झिम। मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वयुग्मयोर्ब्रह्मलान्तवयोरेकैकेन्द्रौ। अपरयुग्मयोः महाशुक्रसहस्त्रारयोरेकैकेन्द्रौ। शेषेष्वष्टसु कल्पेषु सर्वत्रेन्द्रा भवन्ति। इतीन्द्रापेक्षया कल्पा द्वादश भवन्ति।।४५४।।

अब इन्द्र की अपेक्षा कल्पसंख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :— मध्य के चार युगलों में से पूर्व और अपर के दो-दो युगलों में एक-एक इन्द्र होते हैं। शेष चार युगलों के आठ इन्द्र होते हैं। इस प्रकार बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प होते हैं ।।४५४।।

विशेषार्थ :— सोलह स्वर्गों के कुल आठ युगल हैं । जिसमें मध्य के चार युगलों में से पूर्व युगल ब्रह्म, लान्तव और अपर युगल महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रार इन चार युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के चार ही इन्द्र हैं अतः ये चार कल्प हैं । शेष ऊपर नीचे के दो-दो युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के आठ इन्द्र हैं अतः ये आठ कल्प हुए। इस प्रकार सोलह स्वर्गों के बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प हैं।

लोकविभाग ग्रंथ में १२ इन्द्र माने हैं। यथा—

सौधर्मः प्रथमः कल्प ऐशानश्च ततः परः। सनत्कुमारमाहेन्द्रौ ब्रह्मलोकोऽथ लान्तवः[१]।।१७।।

महाशुक्रः सहस्त्रार आनतः प्राणतोऽपि च। आरणश्चाच्युतश्चेति एते कल्पा उदाहृताः।।१८।।

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं—कल्पोत्पन्न और कल्पातीत। उनमें कल्प बारह हैं। उनके आगे कल्पातीत हैं।।१६।। प्रथम कल्प सौधर्म, तत्पश्चात् दूसरा ऐशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत; ये बारह कल्प कहे गये हैं।।१७-१८।।

सिद्धान्तसार दीपक ग्रंथ में भी १२ इन्द्र माने हैं। यथा—

चतुर्णामाद्यनाकानां चत्त्वारो वासवा पृथक्। चतुः स्वर्मध्ययुग्मानां चत्त्वारः स्वर्गनायकाः[२]।।५।।

---

१. लोकविभाग पृ. १७५ से १७६। २. सिद्धान्तसार दीपक-पृ. ५०४ गाथा ६-७।

चतुस्तदग्रनाकानामिन्द्राश्चत्वार ऊर्जिताः। इतीन्द्रसंख्यया कल्पाः कथ्यन्ते द्वादशागमे।।७।।

अर्थ–आदि के चार स्वर्गों के पृथक्-पृथक् चार इन्द्र हैं। अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में से प्रत्येक में एक एक इन्द्र हैं। मध्य के चार युगलों (आठ स्वर्गों) के चार इन्द्र हैं। अर्थात् ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और सहस्रार स्वर्गों में से प्रत्येक में एक एक इन्द्र हैं। ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र और शतार स्वर्गों में इन्द्र नहीं है। शेष ऊपर के आनत, प्राणत, आरण और अच्युत में से प्रत्येक में एक-एक इन्द्र हैं। इस प्रकार आगम में बारह इन्द्र और बारह ही कल्प कहे गये हैं।।-६-७।।

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं नित्य निरंजन परं ज्योति, मैं चिच्चैतन्य चमत्कारी।
मैं ब्रह्मा विष्णु महेश्वर हूँ , मैं बुद्ध जिनेश्वर सुखकारी।।
मैं ही निज का कर्ता धर्ता, मैं अनवधि सुख का भोक्ता हूं।
मैं रत्नत्रय निधि का स्वामी, अगणित गुणमणि का भर्ता हूं।।6।।

मैं सकल निकल हूँ अमल अचल, अविकारी अनुपम गुणकारी।
मैं जन्म रहित हूँ अजर अमर, मैं अरुज अशोक भर्महारी।।
मैं परम पुरुष हूँ परम हंस, समता पीयूष रसास्वादी।
मैं ज्ञायक टंकोत्कीर्ण एक, चिन्मय चिज्ज्योति महाभागी।।7।।

(29) सोलह स्वर्गों के देवियों की आयु

मूलाचार ग्रंथ में देवियों की आयु में दो मत आने से टीकाकार ने बहुत ही सुन्दर समाधान किया है। यथा–
सौधर्मादिदेवीनां परमायुषः प्रमाणं प्रतिपादयन्नाह–

पंचादी वेहिं जुदा सत्तवीसा य पल्ल देवीणं।
तत्तो सत्तुत्तरिया जावदु अरणप्पयं कप्पं[१]।।११२२।।

पंचादी—पंच आदि पंच आदि पंचपल्योपमानि मूलं, **वेहिं जुदा**—द्वाभ्या युक्तानि द्वाभ्यां। द्वाभ्यामधिकानि, वीप्सार्थो द्रष्टव्यः उत्तरोत्तरग्रहणात्। **सत्तावीसा य**—सप्तविंशतिः "चशब्दो यावच्छन्दं समुच्चिनोति--। **पल्ल**—पल्यानि पल्योपमानि यावत्सप्तविंशतिः पल्योपमानि, **देवीणं**—देवीनां देवपत्नीनां, **तत्तो**—ततः पल्यानां सप्तविंशतेरूर्ध्वं, **सत्त**—सप्तसप्त, **उत्तरिया**—उत्तराणि सप्तसप्ताधिकानि पल्योपमानि, **जावदु**—यावत्, **अरणप्पयं कप्पं**—अच्युतकल्पः तावत्। सौधर्मकल्पे देवीनां परमायुः पंचपल्योपमानि, ईशाने सप्त पल्योपमानि,, सानत्कुमारे नव पल्योपमानि, माहेन्द्रे एकादश पल्योपमानि, ब्रह्मकल्पे त्रयोदश पल्योपमानि, ब्रह्मोत्तरे पंचदश पल्योपमानि, लान्तवे सप्तदश पल्योपमानि, कापिष्ठे एकोनविंशतिः पल्योपमानि, शुक्रे एकविंशतिः पल्योपमानि, महाशुक्रे त्रयोविंशतिः पल्योपमानि, शतारे पंचविंशतिः पल्योपमानि, सहस्त्रारे सप्तविंशतिः पल्योपमानि, आनते चतुस्त्रिंशत्पल्योपमानि, प्राणते एकाधिकचत्वारिंशत् पल्योपमानि, आरणे अष्टचत्वारिंशत्पयोपमानि, अच्युते पंचपंचाशत्पल्योपमानि सर्वत्र देवीनां परमायुषः प्रमाणमिति संबन्धः। पंचपल्योपमानि द्वाभ्यां द्वाभ्यां तावदधिकानि कर्त्तव्यानि यावत्सप्तविंशतिः पल्योपमानि भवन्ति, ततः सप्तविंशतिः सप्तभिः सप्तभिरधिका कर्तव्या यावदच्युतकल्पे पंचाशत्पल्योपमानि संजातानीति।।११२२।।

सौधर्म आदि देवियों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ—देवियों की आयु पाँच से लेकर दो-दो मिलाते हुए सत्ताईस पल्य तक करें। पुनः उससे आगे सात-सात बढ़ाते हुए आरण-अच्युत पर्यन्त करना चाहिए।।११२२।।

आचारवृत्ति—सौधर्म कल्प में देवियों की उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य है। ईशानस्वर्ग में सात पल्य, सानत्कुमार में नौ पल्य, माहेन्द्र स्वर्ग में ग्यारह पल्य, ब्रह्मकल्प में तेरह पल्य, ब्रह्मोत्तर में पन्द्रह पल्य, लान्तव में सत्रह पल्य, कापिष्ठ में उन्नीस पल्य, शुक्र में इक्कीस पल्य, महाशुक्र में तेईस पल्य, शतार में पच्चीस पल्य, सहस्त्रार में सत्ताईस पल्य, आनत में चौंतीस पल्य, प्राणत में इकतालीस पल्य, आरण में अड़तालीस पल्य और अच्युत में पचपन पल्य की उत्कृष्ट आयु है। अर्थात् पाँच पल्य से शुरू करके सहस्त्रार स्वर्ग की सत्ताईस पल्य तक दो-दो पल्य बढ़ायी गयी है। पुनः आगे सात-सात पल्य बढ़कर सोलहवें स्वर्ग में पचपन पल्य हो गयी है।

देवीनामायुषः प्रमाणस्य द्वितीयमुपदेशं प्रतिपादयन्नाह–

पणयं दस सत्तधियं पणवीसं तीसमेव पंचधियं।
चत्तालं पणदालं पण्णाओ पण्णपण्णाओ।।११२३।।

---

१. मूलाचार (भाग-२ पृ. २६८-२६९ गाथा-११२२-११२३।

पणयं—पंच सौधर्मैशानयोर्देवीनां पंचपल्योपमानि परमायुः। **दस सत्तधियं**—दश सप्ताधिकानि सानत्कुमार-माहेन्द्रयोर्देवीनां परमायुः सप्तदशपल्योपमानि, पणवीसं—पंचविंशतिः ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्देवीनां पंचविंशतिः पल्योपमानि परमायुः तीसमेव **पंचधियं**—त्रिंशदेव पंचाधिका लान्तवकापिष्ठयोर्देवीनां त्रिंशदेव पंचाधिका पल्योपमानां परमायुः **चत्तालं**—चत्वारिंशच्छुक्रमहाशुक्रयोर्देवीनां चत्वारिंशत्पल्यानां परमायुः, **पणदालं**—पंचचत्वारिंशत् शतारसहस्रारयोर्देवीनां पंचचत्वारिंशत्पल्योपमानां परमायुः, **पण्णासं**—पंचाशद् आनतप्राणतयोर्देवीनां परमायुः पंचाशत्पल्योपमानि, **पण्णपण्णाओ**—पंचपंचाशदारणाच्युतयोर्देवीनां परमायुषः प्रमाणं पंचपंचाशत्पल्योपमानि। **आऊ**—आयुः सर्वत्रानेन संबन्धः। देवायुषः प्रतिपादनन्यायेनायमेवोपदेशो न्याय्योऽत्रैवकारकरणादथवा द्वावप्युपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशाद् द्वयोर्मध्य एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र सन्देहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति सन्देहाभावात्। छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति।।११२३।।

देवियों की आयु के प्रमाण का दूसरा उपदेश कहते हैं—

गाथार्थ—युगल-युगल स्वर्गों में क्रम से पाँच पल्य, सत्रह पल्य, पच्चीस पल्य, पैंतीस पल्य, चालीस पल्य, पैंतालीस पल्य, पचास पल्य और पचपन पल्य आयु है।।११२३।।

आचारवृत्ति—सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में देवियों की उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य है। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में सत्रह पल्य है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में पच्चीस पल्य है। लान्तव-कापिष्ठ में पैंतीस पल्य है। शुक्र-महाशुक्र में चालीस पल्य है। शतार-सहस्रार में पैंतालीस पल्य है। आनत-प्राणत में पचास पल्य है और आरण-अच्युत में पचपन पल्य की उत्कृष्ट आयु है।

देवियों की आयु के प्रतिपादन की रीति से यही उपदेश न्यायसंगत है, क्योंकि यहाँ पर 'एवकार' किया गया है। अथवा दोनों भी उपदेश ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि दोनों ही सूत्र के उपदेश हैं। यद्यपि दोनों में से कोई एक ही सत्य होना चाहिए फिर भी दोनों को ग्रहण करने में संशय मिथ्यात्व नहीं होता है, क्योंकि जो अर्हन्त के द्वारा प्रणीत है वह सत्य है इसमें सन्देह का अभाव है। फिर भी छद्मस्थ जनों को विवेक कराना अर्थात् कौन-सा सत्य है यह समझाना शक्य नहीं है इसलिए मिथ्यात्व के भय से दोनों का ही ग्रहण करना उचित है।

अध्यात्म पीयूष (शुद्धात्म भावना)

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मैं लोकालोक प्रकाशी हूँ , निजज्ञान किरण से व्यापक हूँ।
मैं भूत भविष्यत् वर्तमान, अनवधि पर्यय का ज्ञायक हूँ।।
मैं इन्द्रिय बल उच्छ्वास आयु, आदिक दश प्राणों से विरहित।
सुख सत्ता दर्शन ज्ञानमयी, चेतन प्राणों से नित अन्वित।।8।।

(30) चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या

(तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ से[१])

	तीर्थंकर नाम	प्रथम गणधर नाम	गणधर संख्या	मुनि संख्या
१.	ऋषभदेव	ऋषभदेव	८४	८४ हजार
२.	अजितनाथ	केशरिसेन (सिंहसेन)	९०	१ लाख
३.	सम्भवनाथ	चारुदत्त	१०५	२ लाख
४.	अभिनन्दन नाथ	वज्रचमर	१०३	३ लाख
५.	सुमतिनाथ	वज्र	११६	३ लाख २० हजार
६.	पद्मप्रभु	चमर	१११	३ लाख ३० हजार
७.	सुपार्श्वनाथ	बलदत्त (बलिदत्तक)	९५	३ लाख
८.	चन्द्रप्रभु	वैदर्भ	९३	२-१/२ लाख
९.	पुष्पदन्तनाथ	नाग (अनगार)	८८	२ लाख
१०.	शीतलनाथ	कुंथु	८७	१ लाख
११.	श्रेयांसनाथ	धर्म	७७	८४ हजार
१२.	वासुपूज्यनाथ	मन्दिर	६६	७२ हजार
१३.	विमलनाथ	जय	५५	६८ हजार
१४.	अनन्तनाथ	अरिष्ट	५०	६६ हजार
१५.	धर्मनाथ	सेन (अरिष्टसेन)	४३	६४ हजार
१६.	शान्तिनाथ	चक्रायुध	३६	६२ हजार
१७.	कुन्थुनाथ	स्वयम्भू	३५	६० हजार
१८.	अरहनाथ	कुम्भ (कुंथु)	३०	५० हजार
१९.	मल्लिनाथ	विशाल	२८	४० हजार
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	मल्लि	१८	३० हजार
२१.	नमिनाथ	सुप्रभ (सोमक)	१७	२० हजार
२२.	नेमिनाथ	वरदत्त	११	१८ हजार
२३.	पार्श्वनाथ	स्वयंभू	१०	१६ हजार
२४.	महावीर स्वामी	इन्द्रभूति	११	१४ हजार
			१४५९	२८ लाख ४८ हजार

	गणिनी के नाम	आर्यिका संख्या	श्रावक सं.	श्राविका सं.
१.	ब्राह्मी	३ लाख ५० हजार	३ लाख	५ लाख
२.	प्रकुब्जा	३ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
३.	धर्मश्री	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
४.	मेरुषेणा	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
५.	अनन्ता	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
६.	रतिषेणा	४ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
७.	मीना	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
८.	वरुणा	३ लाख ८० हजार	३ लाख	५ लाख
९.	घोषा	८० हजार	२ लाख	४ लाख
१०.	धरणा	८० हजार	२ लाख	४ लाख
११.	चारणा (धारणा)	१ लाख ३० हजार	२ लाख	४ लाख
१२.	वरसेना	१ लाख ६०००	२ लाख	४ लाख
१३.	पद्मा	१ लाख ३०००	२ लाख	४ लाख
१४.	सर्वश्री	१ लाख ८०००	२ लाख	४ लाख
१५.	सुव्रता	६२ हजार ४००	२ लाख	४ लाख
१६.	हरिषेणा	६० हजार ३००	१ लाख	३ लाख
१७.	भाविता	६० हजार ३५०	१ लाख	३ लाख
१८.	कुंथुसेना	६० हजार	१ लाख	३ लाख
१९.	मधुसेना (बंधुसेना)	५५ हजार	१ लाख	३ लाख
२०.	पूर्वदत्ता (पुष्पदत्ता)	५० हजार	१ लाख	३ लाख
२१.	मार्गिणी	४५ हजार	१ लाख	३ लाख
२२.	यक्षिणी	४० हजार	१ लाख	३ लाख
२३.	सुलोका (सुलोचना)	३८ हजार	१ लाख	३ लाख
२४.	चन्दना	३६ हजार	१ लाख	३ लाख
		५० लाख ५६ हजार २५०	४८ लाख	९६ लाख

चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या

(हरिवंशपुराण से[१])

	तीर्थंकर नाम	प्रभम गणधर नाम	गणधर संख्या	मुनि संख्या
१.	आदिनाथ	वृषभसेन	८४	८४ हजार
२.	अजितनाथ	सिंहसेन	९०	१ लाख
३.	सम्भवनाथ	चारुदत्त	१०५	२ लाख
४.	अभिनन्दननाथ	वज्र	१०३	३ लाख
५.	सुमतिनाथ	चमर	११६	३ लाख २० हजार
६.	पद्मप्रभु[२]	वज्रचमर	१११	३ लाख ३० हजार
७.	सुपार्श्वनाथ	बलि	९५	३ लाख
८.	चन्द्रप्रभु	दत्तक	९३	२-१/२ लाख
९.	पुष्पदंतनाथ	वैदर्भ	८८	२ लाख
१०.	शीतलनाथ	अनगार	८१	१ लाख
११.	श्रेयांसनाथ	कुन्थु	७७	८४ हजार
१२.	वासुपूज्यनाथ	सुधर्म	६६	७२ हजार
१३.	विमलनाथ	मन्दरार्य	५५	६८ हजार
१४.	अनन्तनाथ	जय	५०	६६ हजार
१५.	धर्मनाथ	अरिष्टसेन	४३	६४ हजार
१६.	शांतिनाथ	चक्रायुध	३६	६२ हजार
१७.	कुंथुनाथ	स्वयम्भू	३५	६० हजार
१८.	अरनाथ	कुन्थु	३०	५० हजार
१९.	मल्लिनाथ	विशाख	२८	४० हजार
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	मल्लि	१८	३० हजार
२१.	नमिनाथ	सोमक	१७	२० हजार
२२.	नेमिनाथ	वरदत्त	११	१८ हजार
२३.	पार्श्वनाथ	स्वयंभू	१०	१६ हजार
२४.	महावीर स्वामी	इन्द्रभूति	११	१४ हजार
			१४५३	

१. हरिवंशपुराण पृ. ७३३ से ७४० क। २. हरिवंशपुराण में पद्मप्रभ भगवान के गणधर की संख्या १११ होने से सभी गणधरों की सख्या १४५३ हो गई है।

	प्रमुख गणिनी	आर्यिकाएँ	श्रावक	श्राविकाएँ
१.	०	३ लाख ५० हजार	३ लाख	५ लाख
२.	०	३ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
३.	०	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
४.	०	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
५.	०	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
६.	०	४ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
७.	०	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
८.	०	३ लाख ८० हजार	३ लाख	५ लाख
९.	०	३ लाख ८० हजार	२ लाख	४ लाख
१०.	०	३ लाख ८० हजार	२ लाख	४ लाख
११.	०	१ लाख २० हजार	२ लाख	४ लाख
१२.	०	१ लाख ६ हजार	२ लाख	४ लाख
१३.	०	१ लाख ३० हजार	२ लाख	४ लाख
१४.	०	१ लाख ८ हजार	२ लाख	४ लाख
१५.	०	६२ हजार ४००	२ लाख	४ लाख
१६.	०	६० हजार ३००	२ लाख	४ लाख
१७.	०	६० हजार ३५०	१ लाख	३ लाख
१८.	०	६० हजार	१ लाख	३ लाख
१९.	०	५५ हजार	१ लाख	३ लाख
२०.	०	५० हजार	१ लाख	३ लाख
२१.	०	४५ हजार	१ लाख	३ लाख
२२.	०	४० हजार	१ लाख	३ लाख
२३.	०	३८ हजार	१ लाख	३ लाख
२४.	०	३५ हजार	१ लाख	३ लाख

चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या

(महापुराण (उत्तरपुराण) से)

	तीर्थंकर नाम	प्रमुख गणधर नाम	गणधर संख्या	मुनि संख्या
१.	श्री ऋषभदेव	श्री ऋषभसेन	८४	८४ हजार
२.	अजितनाथ	सिंहसेन	९०	१ लाख
३.	सम्भवनाथ	चारुषेण	१०५	२ लाख
४.	अभिनन्दननाथ	वज्रनाभि	१०३	३ लाख
५.	सुमतिनाथ	अमर	११६	३ लाख २० हजार
६.	पद्मप्रभु	वज्रचामर	११०	३ लाख ३० हजार
७.	सुपार्श्वनाथ	बल	९५	३ लाख
८.	चन्द्रप्रभु	दत्त	९३	२-१/२ लाख
९.	पुष्पदंतनाथ	विदर्भ	८८	२ लाख
१०.	शीतलनाथ	अनगार	८१	१ लाख
११.	श्रेयांसनाथ	कुन्थु	७७	८४ हजार
१२.	वासुपूज्यनाथ	धर्म	६६	७२ हजार
१३.	विमलनाथ	मन्दर	५५	६८ हजार
१४.	अनन्तनाथ	जय	५०	६६ हजार
१५.	धर्मनाथ	अरिष्टसेन	४३	६४ हजार
१६.	शांतिनाथ	चक्रायुध	३७	६२ हजार
१७.	कुंथुनाथ	स्वयंभू	३५	६० हजार
१८.	अरनाथ	कुम्भार्य	३०	५० हजार
१९.	मल्लिनाथ	विशाख	२८	४० हजार
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	मल्लि	१८	३० हजार
२१.	नमिनाथ	सुप्रभार्य	१७	२० हजार
२२.	नेमिनाथ	वरदत्त	११	१८ हजार
२३.	पार्श्वनाथ	स्वयंभू	१०	१७ हजार
२४.	महावीर स्वामी	इन्द्रभूति गौतम	११	१४ हजार
			१४५२	

	प्रमुख गणिनी	आर्यिकाएं	श्रावक	श्राविकाएं
१.	ब्राह्मी	३ लाख ५० हजार	३ लाख	५ लाख
२.	प्रकुब्जा	३ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
३.	धर्मार्या	३ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
४.	मेरुषेणा	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
५.	अनन्तमती	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
६.	रात्रिषेणा	४ लाख २० हजार	३ लाख	५ लाख
७.	मीनार्या	३ लाख ३० हजार	३ लाख	५ लाख
८.	वरुणा	३ लाख ८० हजार	३ लाख	५ लाख
९.	घोषार्या	३ लाख ८० हजार	२ लाख	५ लाख
१०.	धरणा	१ लाख ८० हजार	२ लाख	३ लाख
११.	धारणा	१ लाख २० हजार	२ लाख	४ लाख
१२.	सेना	१ लाख ६०००	२ लाख	४ लाख
१३.	पद्मा	१ लाख ३०००	२ लाख	४ लाख
१४.	सर्वश्री	१ लाख ८०००	२ लाख	४ लाख
१५.	सुव्रता	६२ हजार ४००	२ लाख	४ लाख
१६.	हरिषेणा	६० हजार ३००	२ लाख	४ लाख
१७.	भाविता	६० हजार ३५०	२ लाख	३ लाख
१८.	यक्षिला	६० हजार	१ लाख ६० हजार	३ लाख
१९.	बन्धुषेणा	५५ हजार	१ लाख	३ लाख
२०.	पुष्पदंता	५० हजार	१ लाख	३ लाख
२१.	मंगिनी	४५ हजार	१ लाख	३ लाख
२२.	राजीमती	४० हजार	१ लाख	३ लाख
२३.	सुलोचना	३६ हजार	१ लाख	३ लाख
२४.	चन्दना	३६ हजार	१ लाख	३ लाख

(31) चौबीस तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियाँ

(उत्तरपुराण से)

	तीर्थंकर नाम	गर्भकल्याणक	जन्मकल्याणक
१.	आदिनाथ	आषाढ़ कृ. द्वितीया	चैत्र बदी नवमी
२.	अजितनाथ	ज्येष्ठ कृ. अमावस्या	माघ शु. दशमी
३.	सम्भवनाथ	फाल्गुन शु. अष्टमी	कार्तिक शु. पूर्णिमा
४.	अभिनन्दननाथ	बैशाख शु. षष्ठी	माघ शु. द्वादशी
५.	सुमतिनाथ	श्रावण शु. द्वितीया	चैत्र शु. एकादशी
६.	पद्मप्रभ	माघ कृ. षष्ठी	कार्तिक कृ. त्रयोदशी
७.	सुपार्श्वनाथ	भाद्रपद शु. षष्ठी	ज्येष्ठ शु. द्वादशी
८.	चन्द्रप्रभ	चैत्र कृ. पञ्चमी	पौष कृ. एकादशी
९.	पुष्पदन्तनाथ	फाल्गुन कृ. नवमी	मगशिर शु. प्रतिपदा
१०.	शीतलनाथ	चैत्र कृ. अष्टमी	माघ कृ. द्वादशी
११.	श्रेयांसनाथ	ज्येष्ठ कृ. षष्ठी	फाल्गुन कृ. एकादशी
१२.	वासुपूज्यनाथ	आषाढ़ कृ. षष्ठी	फाल्गुन कृ. चतुर्दशी
१३.	विमलनाथ	ज्येष्ठ कृ. दशमी	माघ शु. चतुर्थी
१४.	अनंतनाथ	कार्तिक कृ. प्रतिपदा	ज्येष्ठ कृ. द्वादशी
१५.	धर्मनाथ	बैशाख शु. त्रयोदशी	माघ शु. त्रयोदशी
१६.	शांतिनाथ	भादों वदी सप्तमी	ज्येष्ठ कृ. चतुर्थी
१७.	कुंथुनाथ	श्रावण कृ. दशमी	बैशाख शु. प्रतिपदा
१८.	अरनाथ	फाल्गुन कृ. तृतीया	मगशिर शु. १४
१९.	मल्लिनाथ	चैत्र शु. प्रतिपदा	मगशिर सुदी ११
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण कृ. द्वितीया	बैशाख कृष्णा १२
२१.	नमिनाथ	आश्विन कृ. द्वितीया	आषाढ़ कृष्णा दशमी
२२.	नेमिनाथ	कार्तिक शु. छठ	श्रावण सुदी षष्ठी
२३.	पार्श्वनाथ	बैशाख वदी दूज	षौषवदी ग्यारस
२४.	महावीर स्वामी	आषाढ़ सुदी छठ	चैत्र सुदी तेरस

	तपकल्याणक	केवलज्ञान कल्याणक	मोक्ष कल्याणक
१.	चैत्र बदी नवमी	फाल्गुन कृ. एकादशी	माघ कृ.-१४
२.	माघ शु. नवमी	पौष शु. एकादशी	चैत्र शु. पंचमी
३.	कार्तिक शु. पूर्णिमा	कार्तिक कृ. चतुर्थी	चैत्र शु. षष्ठी
४.	माघ शु. द्वादशी	पौष शु. चौदस	बैशाख शु. षष्ठी
५.	बैशाख सुदी नवमी	चैत्र शु. एकादशी	चैत्र शु. एकादशी
६.	कार्तिक कृ. त्रयोदशी	चैत्र शु. पूर्णिमा	फाल्गुन कृ. चतुर्थी
७.	ज्येष्ठ शु. द्वादशी	फाल्गुन कृ. षष्ठी	फाल्गुन कृ. सप्तमी
८.	पौष कृ. एकादशी	फाल्गुन कृ. सप्तमी	फाल्गुन शु. सप्तमी
९.	मगशिर शु. प्रतिपदा	कार्तिक शु. द्वितीया	भाद्रपद शु. अष्टमी
१०.	माघ कृ. द्वादशी	पौष कृ. चतुर्दशी	आश्विन शु. अष्टमी
११.	फाल्गुन कृ. एकादशी	माघ कृ. अमावस्या	श्रवण शु. पूर्णिमा
१२.	फाल्गुन कृ. १४	माघ शु. द्वितीया	भाद्रपद शु. १४
१३.	माघ शु. चतुर्थी	माघ शु. षष्ठी	आषाढ़ कृ. ८
१४.	ज्येष्ठ कृ. द्वादशी	चैत्र कृ. अमावस्या	चैत्र कृ. अमावस
१५.	माघ शु. त्रयोदशी	पौष शु. पूर्णिमा	ज्येष्ठ शु. चतुर्थी
१६.	ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी	पौष शु. दशमी	ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी
१७.	बैशाख शु. प्रतिपदा	चैत्र शु. तृतीया	बैशाख शु. प्रतिपदा
१८.	मगशिर शु. दशमी	कार्तिक शु. द्वादशी	चैत्र कृ. अमावस
१९.	मगशिर सुदी ११	पौष कृ. २	फाल्गुन शु. सप्तमी
२०.	बैशाख कृ. दशमी	बैशाख कृ. नवमी	फाल्गुन कृ. द्वादशी
२१.	आषाढ़ कृ. दशमी	मगशिर शु. एकादशी	बैशाख कृ. १४
२२.	श्रावण शु. षष्ठी	आसोज कृ. प्रथमा	आषाढ़ शु. सप्तमी
२३.	पौष वदी ग्यारस	चैत्र कृ. चतुर्दशी	श्रावण शु. सप्तमी
२४.	मगशिर कृ. दशमी	बैशाख सुदी दसमी	कार्तिक कृ. अमावस्या

चौबीस तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथियाँ

(हरिवंशपुराण से[१])

	तीर्थंकर नाम	गर्भकल्याणक	जन्मकल्याणक
१.	ऋषभनाथ	०	चैत्र कृष्ण नवमी
२.	अजितनाथ	०	माघ शु. नवमी
३.	सम्भवनाथ	०	मगशिर शु. पूर्णिमा
४.	अभिनन्दननाथ	०	माघ शु. द्वादशी
५.	सुमतिनाथ	०	श्रावण शु. एकादशी
६.	पद्मप्रभ	०	कार्तिक कृ. त्रयोदशी
७.	सुपार्श्वनाथ	०	ज्येष्ठ शु. द्वादशी
८.	चन्द्रप्रभ	०	पौष कृ. एकादशी
९.	पुष्पदन्तनाथ	०	मगशिर शु. प्रतिपदा
१०.	शीतलनाथ	०	माघ कृ. द्वादशी
११.	श्रेयांसनाथ	०	फाल्गुन कृ. एकादशी
१२.	वासुपूज्यनाथ	०	फाल्गुन कृ. चौदस
१३.	विमलनाथ	०	माघ शु. १४
१४.	अनंतनाथ	०	ज्येष्ठ कृ. १२
१५.	धर्मनाथ	०	माघ शु. १३
१६.	शांतिनाथ	०	ज्येष्ठ कृ. १४
१७.	कुंथुनाथ	०	बैशाख शु. प्रतिपदा
१८.	अरनाथ	०	मगशिर शु. १४
१९.	मल्लिनाथ	०	मगशिर शु. ११
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	०	आसोज शु. १२
२१.	नमिनाथ	०	आषाढ़ कृ. १०
२२.	नेमिनाथ	०	बैशाख शु. १३
२३.	पार्श्वनाथ	०	पौष कृ. ११
२४.	महावीर स्वामी	०	चैत्र श. १३

१. हरिवंशपुराण पृ. ७१८ से ७२६ तक।

	दीक्षा कल्याणक	केवलज्ञान कल्याणक	मोक्ष कल्याणक
१.	चैत्र कृ. नवमी	फाल्गुन कृ. एकादशी	माघ कृ. १४
२.	माघ शु. नवमी	पौष शु. चतुर्दशी	चैत्र शु. ५
३.	मगशिर शु. १५	कार्तिक कृ. पंचमी	चैत्र शु. ६
४.	माघ शु. द्वादशी	पौष शु. पूर्णिमा	बैशाख शु. ७
५.	बैशाख सुदी नवमी	चैत्र शु. दशमी	चैत्र शु. दशमी
६.	कार्तिक कृ. १३	चैत्र शु. दशमी	फाल्गुन कृ. १४
७.	ज्येष्ठ कृ. द्वादशी	फाल्गुन कृ. सप्तमी	फाल्गुन कृ. ७
८.	पौष कृ. ११	फाल्गुन कृ. सप्तमी	भाद्रपद शु. सप्तमी
९.	मगशिर शु.प्रतिपदा	कार्तिक शु. तृतीया	भाद्रपद शु. अष्टमी
१०.	माघ कृ. १२	पौष कृ. १४	आश्विन शु. पंचमी
११.	फाल्गुन कृ. १३	माघ कृ. अमावस	श्रावण शु. पूर्णिमा
१२.	फाल्गुन कृ. १४	माघ शु. द्वितीया	फाल्गुन शु. ५
१३.	माघ शु. ४	पौष कृ. १०	आषाढ़ कृ. ८
१४.	ज्येष्ठ कृ. १२	चैत्र कृ. अमावस	चैत्र कृ. अमावस
१५.	माघ शु. १३	पौष शु. पूर्णिमा	ज्येष्ठ शु. ४
१६.	ज्येष्ठ कृ. १३	पौष शु. एकादशी	ज्येष्ठ कृ. १४
१७.	बैशाख शु. प्रतिपदा	चैत्र शु. ३	बैशाख शु. प्रतिपदा
१८.	मगशिर शु. १०	कार्तिक शु. १२	चैत्र कृ. अमावस
१९.	मगशिर शु. ११	फाल्गुन कृ. १२	फाल्गुन शु. ५
२०.	बैशाख कृ. नवमी	फाल्गुन कृ. ६	फाल्गुन कृ. १२
२१.	आषाढ़ कृ. १०	चैत्र शु. ३	बैशाख कृ. १४
२२.	श्रवण शु. ४	आश्विन शु. प्रतिपदा	आषाढ़ शु. ८
२३.	पौष कृ. ११	चैत्र कृ. ४	श्रावण शु ७
२४.	मगशिर कृ. १०	बैशाख शु. १०	कार्तिक कृ. १४

(32) सम्मेदशिखर टोंक से मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या

(श्री सम्मेदशिखर माहात्म्य)

(श्रीमद् यतिवर देवदत्त विरचितं) (श्री लोहाचार्य)

कूट का नाम	तीर्थंकर नाम	मोक्ष गए मुनियों की संख्या
१. सिद्धवर कूट	श्री अजितनाथ	१ अरब ८४ करोड़ ४५ लाख मुनि
२. सुप्रभकूट	श्री संभवनाथ	९ कोड़ाकोड़ि ७२ लाख ७ हजार ५४२ मुनि
३. आनंदकूट	श्री अभिनंदननाथ	७३ कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ४२ हजार ७०५ मुनि।
४. अविचलकूट	श्री सुमतिनाथ	१ अरब ८४ करोड़ १४ लाख ७८१ मुनि।
५. मोहनकूट	श्री पदमप्रभु	९९ करोड़, ८४ लाख, ४२ हजार, ७२७ मुनि
६. प्रभासकूट	श्री सुपार्श्वनाथ	४९ कोड़ाकोड़ि, ८४ करोड़, ७२ लाख ७ हजार ७४२ मुनि
७. ललितकूट	श्री चंद्रप्रभु	४ अरब ७२ करोड़ ८० लाख ८४ हजार ५५५ मुनि
८. धवलदत्तकूट	श्री पुष्पदंतनाथ	९९ करोड़ ९० लाख, ७ हजार ४८० मुनि
९. विद्युत्वर कूट	श्री शीतलनाथ	१८ कोड़ाकोड़ि, ४२ करोड़ ३२ लाख, ४२ हजार ९०५ मुनि
१०. संकुल कूट	श्री श्रेयांसनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि, ९६ करोड़, १ लाख ४५ हजार, ५४२ मुनि
११. सुवीर कूट	श्री विमलनाथ	७ करोड़, ६० लाख, ६ हजार ७४२ मुनि
१२. स्वयंभू कूट	श्री अनंतनाथ	९० कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ७ हजार ७०० मुनि
१३. सुदत्तकूट	श्री धर्मनाथ	१९ कोड़ाकोड़ि १९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ७९५ मुनि
१४. प्रभासकूट	श्री शांतिनाथ	१ कोड़ाकोड़ि ९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ९९९ मुनि
१५. ज्ञानधरकूट	श्री कुंथुनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि ९६ करोड़ ३२ लाख ९६ हजार ७४२ मुनि
१६. नाटककूट	श्री अरहनाथ	९९ करोड़ ९९ लाख ९९ हजार मुनि
१७. संबलकूट	श्री मल्लिनाथ	९९ करोड़ मुनि
१८. निरजरकूट	श्री मुनिसुव्रतनाथ	९ करोड़ ४ लाख ३० हजार मुनि
१९. मित्रधरकूट	श्री नमिनाथ	१ अरब ९ सौ कोड़ाकोड़ि ४५ लाख ७ हजार ९४२ मुनि
२०. स्वर्णभद्र कूट	श्री पार्श्वनाथ	१ करोड़ चौरासी लाख मुनि

सम्मेदशिखर टोंक से मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या

(श्री सम्मेदशिखर वंदना-गणिनी ज्ञानमती कृत[१])

कूट का नाम	तीर्थंकर नाम	मोक्ष गए मुनियों की संख्या
१. सिद्धवर कूट	श्री अजितनाथ भगवान	१ अरब ८४ करोड़ ४५ लाख मुनि
२. धवलदत्त कूट	श्री संभवनाथ भगवान	९ कोड़ाकोड़ि ७२ लाख ७ हजार ५४२ मुनि
३. आनंदकूट	श्री अभिनंदननाथ	७३ कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ७ हजार ५४२
४. अविचलकूट	श्री सुमतिनाथ	१ अरब, ८४ करोड़ १४ लाख ७८१ मुनि।
५. मोहनकूट	श्री पदमप्रभु	९९ करोड़, ८७ लाख, ४३ हजार, ७२७ मुनि
६. प्रभासकूट	श्री सुपार्श्वनाथ	४९ कोड़ाकोड़ि, ८४ करोड़, ७२ लाख ७ हजार ७४२
७. ललितकूट	श्री चंद्रप्रभु	८४ करोड़ अरब, ७२ करोड़ ८० लाख ८४ हजार ५५५ मुनि
८. सुप्रभकूट	श्री पुष्पदंतनाथ	९९ करोड़ ९० लाख, ७ हजार ४८० मुनि
९. विद्युत्वर कूट	श्री शीतलनाथ	१८ कोड़ाकोड़ि, ४२ करोड़ ३२ लाख, ४२ हजार ९०५ मुनि
१०.संकूल कूट	श्री श्रेयांसनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि, ९६ करोड़, ९६ लाख ९० हजार, ५४२ मुनि
११. सुवीर कूट	श्री विमलनाथ	७० करोड़, ६० लाख, ६ हजार ७४२ मुनि
१२. स्वयंभू कूट	श्री अनंतनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ७० हजार ७०० मुनि
१३. सुदत्तकूट	श्री धर्मनाथ	१९ कोड़ाकोड़ि ९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ७९५ मुनि
१४. प्रभासकूट	श्री शांतिनाथ	९ कोड़ाकोड़ि ९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ९०० मुनि
१५. ज्ञानधरकूट	श्री कुंथुनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि ९६ करोड़ ३२ लाख ९६ हजार ७४२ मुनि
१६. नाटककूट	श्री अरहनाथ	९९ करोड़ ९९ लाख ९९ हजार मुनि
१७. संबलकूट	श्री मल्लिनाथ	९६ करोड़ मुनि
१८. निर्जरकूट	श्री मुनिसुव्रतनाथ	९ करोड़ ४ लाख ३ हजार मुनि
१९. मित्रधरकूट	श्री नमिनाथ	९०० कोड़ाकोड़ि १ अरब ४५ लाख ७ हजार ९४२ मुनि
२०. स्वर्णभद्र कूट	श्री पार्श्वनाथ	८२ करोड़ ८४ लाख ४५ हजार ७४२ मुनि

१. जिनस्तोत्रसंग्रह पृ. १८९ से २१० तक। यह वंदना मैंने सोलापुर में कन्नड़ की प्रति से सम्मेदशिखर टोंक से मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या के आधार से बनायी थी।

सम्मेदशिखर टोंक से मुक्ति प्राप्त मुनियों की संख्या

(श्री सम्मेदशिखर टोंक पूजन-गणिनी ज्ञानमती कृत[१])

कूट का नाम	तीर्थंकर नाम	मोक्ष गए मुनियों की संख्या
१. सिद्धवर कूट	श्री अजितनाथ	१ अरब ८० करोड़ ५४ लाख मुनि
२. धवल कूट	श्री संभवनाथ	९ कोड़ाकोड़ि ७२ लाख ४२ हजार ५०० मुनि
३. आनंदकूट	श्री अभिनंदननाथ	७२ कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ४२ हजार ७०० मुनि।
४. अविचलकूट	श्री सुमतिनाथ	१ कोड़कोड़ि ८४ करोड़ ७२ लाख ८१ हजार ७८१ मुनि।
५. मोहनकूट	श्री पद्मप्रभु	९९ करोड़, ८७ लाख, ४३ हजार, ७२७ मुनि
६. प्रभासकूट	श्री सुपार्श्वनाथ	४९ कोड़ाकोड़ि, ८४ करोड़, ३२ लाख ७ हजार ७४२ मुनि।
७. ललितकूट	श्री चंद्रप्रभु	९८४ अरब ७२ करोड़ ८० लाख ८४ हजार ५९५ मुनि
८. सुप्रभकूट	श्री पुष्पदंतनाथ	१ कोड़ाकोड़ि ९९ लाख, ७ हजार ४८० मुनि
९. विद्युत्वर कूट	श्री शीतलनाथ	१८ कोड़ाकोड़ि, ४२ करोड़ ३२ लाख, ४२ हजार ९०५ मुनि
१०.संकुल कूट	श्री श्रेयांसनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि, ९६ करोड़, ९६ लाख ९ हजार, ५४२ मुनि
११. सुवीर कूट	श्री विमलनाथ	७० करोड़, ६० लाख, ६ हजार ७४२ मुनि
१२. स्वयंभू कूट	श्री अनंतनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि ७० करोड़ ७० लाख ७० हजार ७०० मुनि
१३. सुदत्तकूट	श्री धर्मनाथ	२९ कोड़ाकोड़ि १९ करोड़ ९ लाख ९ हजार ७९५ मुनि
१४. कुंदप्रभ कूट	श्री शांतिनाथ	९ कोड़ाकोड़ि ९ लाख ९ हजार ९९९ मुनि
१५. ज्ञानधरकूट	श्री कुंथुनाथ	९६ कोड़ाकोड़ि ९६ करोड़ ३२ लाख ९६ हजार ७४२ मुनि
१६. नाटककूट	श्री अरहनाथ	९९ करोड़ ९९ लाख ९९९ मुनि
१७. संबलकूट	श्री मल्लिनाथ	९६ करोड़ मुनि
१८. निरजरकूट	श्री मुनिसुव्रतनाथ	९९ कोड़ाकोड़ि ९७ करोड़ ९ लाख ९९९ मुनि
१९. मित्रधरकूट	श्री नमिनाथ	९०० कोड़ाकोड़ि १ अरब ४५ लाख ७ हजार ९४२ मुनि
२०. सुवर्णभद्र कूट	श्री पार्श्वनाथ	८२ करोड़ ८४ लाख ४५ हजार ७४२ मुनि

---

१. जम्बूद्वीप पूजांजलि पृ. २८८ से ३०१ तक।

नोट–इसमें प्रसिद्धि को प्राप्त 'श्री सम्मेदशिखर कूट पूजन' के आधार से मोक्ष प्राप्त मुनियों की संख्या ली है।

(33) चौबीस तीर्थंकर के माता-पिता के नाम

(अन्तर—विभिन्न ग्रंथों में)

	तिलोयपण्णत्ति से[१]		उत्तरपुराण से	
तीर्थंकर के नाम	पिता	माता	पिता	माता
१. श्री ऋषभदेव	नाभिराय	मरुदेवी	नाभिराय	मरुदेवी
२. श्री अजितनाथ	जितशत्रु	विजया	जितशत्रु	विजयसेना
३. श्री संभवनाथ	जितारि	सुसेना	दृढ़राज	सुषेणा
४. श्री अभिनंदननाथ	संवर	सिद्धार्था	स्वयंवर	सिद्धार्था
५. श्री सुमतिनाथ	मेघप्रभ	मंगला	मेघरथ	मङ्गला
६. श्री पद्मप्रभ	धरण	सुसीमा	धरण	सुसीमा
७. श्री सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथिवी	सुप्रतिष्ठ	पृथिवीषेणा
८. श्री चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मीमती	महासेन	लक्ष्मणा
९. श्री पुष्पदन्त	सुग्रीव	रामा	सुग्रीव	जयरामा
१०. श्री शीतलनाथ	दृढ़रथ	नन्दा	दृढ़रथ	सुनन्दा
११. श्री श्रेयांसनाथ	विष्णु	वेणुदेवी	विष्णु	सुनन्दा
१२. श्री वासुपूज्यनाथ	वसुपूज्य	विजया	वसुपूज्य	जयावती
१३. श्री विमलनाथ	कृतवर्मा	जयश्यामा	कृतवर्मा	जयश्यामा
१४. श्री अनंतनाथ	सिंहसेन	सर्वयशा	सिंहसेन	जयश्यामा
१५. श्री धर्मनाथ	भानु	सुव्रता	भानु	सुप्रभा
१६. श्री शांतिनाथ	विश्वसेन	ऐरा	विश्वसेन	ऐरा
१७. श्री कुंथुनाथ	शूरसेन (सूर्यसेन)	श्रीमती	सूरसेन	श्रीकान्ता
१८. श्री अरनाथ	सुदर्शन	मित्रा	सुदर्शन	मित्रसेना
१९. श्री मल्लिनाथ	कुम्भ	प्रभावती	कुम्भ	प्रजावती
२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ	सुमित्र	पद्मा	सुमित्र	सोमा
२१. श्री नमिनाथ	विजय	वप्रिला	विजय	वप्पिला
२२. श्री नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवदेवी	समुद्रविजय	शिवदेवी
२३. श्री पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वर्मिला	विश्वसेन	ब्राह्मी
२४. श्री महावीर स्वामी	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी

१. तिलोयपण्णत्ति, पृ. १०१३, चौबीस तीर्थंकर चार्ट से।

महाशांतिधारा से[१]			प्रतिष्ठातिलक[२] (महायाग मण्डलाराधना)
तीर्थंकर के नाम	**पिता**	**माता**	**माता**
१. श्री ऋषभदेव	नाभिराज	मरुदेवी	मरुदेवी
२. श्री अजितनाथ	जितशत्रु	विजया	विजया
३. श्री संभवनाथ	दृढ़राज	सुषेणा	सुषेणा
४. श्री अभिनंदननाथ	स्वयंवर	सिद्धार्था	सिद्धार्था
५. श्री सुमतिनाथ	मेघराज	सुमंगला	मंगला
६. श्री पद्मप्रभ	धरणराज	सुसीमा	सुषीमा
७. श्री सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	पृथिवीषेणा
८. श्री चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	लक्ष्मणा
९. श्री पुष्पदन्त	सुग्रीव	जयरामा	रामा
१०. श्री शीतलनाथ	दृढ़रथ	सुनन्दा	सुनंदा
११. श्री श्रेयांसनाथ	विष्णुराज	नंदा	विष्णुश्री
१२. श्री वासुपूज्यनाथ	वसुपूज्य	जयावती	जया
१३. श्री विमलनाथ	कृतवर्म	अर्यश्यामा	जयश्यामा
१४. श्री अनंतनाथ	सिंहसेन	लक्ष्मीमती	सुव्रता
१५. श्री धर्मनाथ	भानुराज	सुप्रभा	सुप्रभा
१६. श्री शांतिनाथ	विश्वसेन	ऐरादेवी	ऐरिणी
१७. श्री कुंथुनाथ	सूरसेन	श्रीकांता	सुमित्रा
१८. श्री अरनाथ	सुदर्शन	मित्रसेना	प्रभावती
१९. श्री मल्लिनाथ	कुंभराज	प्रभावती	पद्मावती
२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ	सुमित्र	सोमा	वप्रा
२१. श्री नमिनाथ	विजय	वर्मिला	विनूता
२२. श्री नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवादेवी	शिवदेवी
२३. श्री पार्श्वनाथ	विश्वसेन	ब्राह्मी	देवदत्ता
२४. श्री महावीर स्वामी	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी	प्रियकारिणी

१. जम्बूद्वीप पूजांजलि, पृ. ६०५। २. प्रतिष्ठातिलक, पृ. १३५ से १३८ तक।

(34) चौबीस तीर्थंकर के यक्ष-यक्षी के नाम

(अन्तर—विभिन्न ग्रंथों में)

तिलोयपण्णत्ति से[1]		प्रतिष्ठातिलक से[2]		
यक्ष के नाम	यक्षी के नाम	यक्ष के नाम	यक्षी के नाम (श्लोक में)	यक्षी के नाम (मंत्र में)
१. गोवदन	चक्रेश्वरी	गोमुख	चक्रेश्वरी	अप्रतिचक्रा चक्रेश्वरी
२. महायक्ष	रोहिणी	महायक्ष	रोहिणी	अजिता
३. त्रिमुख	प्रज्ञप्ति	त्रिमुखयक्ष	प्रज्ञप्ती	नम्रेक्षी
४. यक्षेश्वर	वज्रशृंखला	यक्षेश्वर	वज्रशृंखला	दुरितारिदेवी
५. तुम्बुरव	व्रजांकुशा	तुंबुरयक्ष	पुरुषदत्ता	संसारीदेवी
६. मातंग	अप्रतिचक्रेश्वरी	पुष्पयक्ष	मनोवेगा	मोहिनी
७. विजय	पुरुषदत्ता	मातंग यक्ष	कालीदेवी	मानवी देवी
८. अजित	मनोवेगा	श्यामयक्ष	ज्वालिनी	ज्वालामालिनी
९. ब्रह्म	काली	अजितयक्ष	महाकाली	भृकुटी देवी
१०. ब्रह्मेश्वर	ज्वालामालिनी	ब्रह्मयक्ष	मानवी	चामुण्डी
११. कुमार	महाकाली	ईश्वरयक्ष	गौरी देवी	गोमेधयक्षी
१२. षण्मुख	गौरी	कुमारयक्ष	गांधारी	विद्युन्मालिनी
१३. पाताल	गांधारी	षण्मुखयक्ष	वरोटिका	विद्यादेवी
१४. किन्नर	वैरोटी	पातालयक्ष	अनंतमती	विजृंभिणी
१५. किंपुरुष	सोलसा-अनंतमती	किन्नरयक्ष	मानसी	परभृतादेवी
१६. गरुड़	मानसी	गरुड़ यक्ष	महामानसी	कंदर्पा देवी
१७. गंधर्व	महामानसी	गंधर्व यक्ष	जया देवी	गांधारिणी
१८. कुबेर	जया	खेन्द्रयक्ष	तारावती	कालीदेवी
१९. वरुण	विजया	कुबेर यक्ष	अपराजिता	अनातज देवी
२०. भृकुटि	अपराजिता	वरुण यक्ष	बहुरूपिणी	सुगंधिनी
२१. गोमेध	बहुरूपिणी	भृकुटि यक्ष	चामुण्डिका	कुसुममालिनी
२२. पार्श्व	कूष्मांडी	गोमेधयक्ष	आम्रादेवी	कूष्माण्डी देवी
२३. मातंग (धरणेन्द्र)	पद्मावती	धरणयक्ष	पद्मावती	पद्मावती
२४. गुह्यक	सिद्धायिनी	मातंगयक्ष	सिद्धायिका	सिद्धायिनी

१. तिलोयपण्णत्ति-अधिकार-४, पृ. ३८७। २. प्रतिष्ठातिलक, पृ. १५२ से १५६ तक, पृ. १६०।

महाशांतिधारा में[१]		वास्तुसार में[२]	
यक्ष के नाम	**यक्षी के नाम**	**यक्ष के नाम**	**यक्षी के नाम**
१. गोमुख	चक्रेश्वरी	गोमुख	चक्रेश्वरी
२. महायक्ष	रोहिणी	महायक्ष	अजिता (रोहिणी)
३. त्रिमुख	प्रज्ञप्ति	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति (नम्रा)
४. यक्षेश्वर	वज्रशृँखला	यक्षेश्वर	वज्रशृँखला (दुरितारी)
५. तुम्बरु	पुरुषदत्ता	तुम्बर	खड्गवरा (पुरुषदत्ता)
६. कुसुम	मनोवेगा	पुष्प	मनोवेगा (मोहिनी)
७. वरनन्दि	काली	मातंग	काली (मानवी)
८. विजय	ज्वालामालिनी	श्याम	ज्वालामालिनी
९. अजित	महाकाली	अजित	महाकाली (भृकुटी)
१०. ब्रह्मेश्वर	मानवी	ब्रह्म	मानवी (चामुंडा)
११. कुमार	गौरी	ईश्वर	गौरी (गोमेधकी)
१२. षण्मुख	गान्धारी	कुमार	गांधारी (विद्युन्मालिनी)
१३. पाताल	वैरोटी	चतुर्मुख	वैरोटी
१४. किन्नर	अनंतमति	पाताल	अनन्तमती (विजृंभणी)
१५. किम्पुरुष	मानसी	किन्नर	मानसी (परभृता)
१६. गरुड़	महामानसी	गरुड़	महामानसी (कंदर्पा)
१७. गन्धर्व	जया	गंधर्व	जया (गांधारी)
१८. महेन्द्र	विजया	खेन्द्र	तारावती (काली)
१९. कुबेर	अपराजिता	कुबेर	अपराजिता
२०. वरुण	बहुरूपिणी	वरुण	बहुरूपिणी
२१. विद्युत्प्रभ	चामुण्डी	भृकुटि	चामुंडा (कुसुममालिनी)
२२. सर्वाण्ह	कूष्माण्डी	गोमेद	आम्रा, अम्बा देवी (कुष्माण्डिनी)
२३. धरणेन्द्र	पद्मावती	धरणेन्द्र	पद्मावती
२४. मातङ्ग	सिद्धायिनी	मातंग	सिद्धायिका

१. जम्बूद्वीप पूजांजलि, पृ. ५६७। २. वास्तुसार, पृ. १७६ से १९९ तक।

प्रशस्ति

तीर्थकृच्चक्रभृत्काम-देवत्रिपदधारिणः।
शान्तिकुंथ्वरतीर्थेशाः कुर्वन्तु मम मंगलम् ।।१।।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।२।।

मूलसंघे प्रसिद्धेऽस्मिन् कुंदकुंदान्वयोऽभवत्।
गच्छे सरस्वतीनाम्नि, बलात्कारे गणे शुभे।।३।।

चारित्रचक्रवर्ती यः सूरिः श्री शांतिसागरः।
तस्य पट्टाधिपः सूरिः श्रीवीरसागरो गुरूः।।४।।

अस्मान्महाव्रतं लब्ध्वा, ज्ञानमत्याख्ययाभवम्।
किंचित् ज्ञानं मया लब्धं, सरस्वत्याः प्रसादतः।।५।।

नवत्रिपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे फाल्गुनेऽसिते।
एकादश्यां [1]तिथावार्षो, ग्रन्थोऽयं पर्यपूर्यत।।६।।

प्रभोः वृषभदेवस्य, ज्ञानकल्याणमाश्रिता।
मंगलं सा तिथिश्चापि, श्री ऋषभस्य शासनम्।।७।।

शांतिकुंथ्वरतीर्थेशां, चतुःकल्याणकैर्नुतम्।
हस्तिनापुरं तीर्थं, अस्माकं मंगलं क्रियात्।।८।।

गणिनीज्ञानमत्यासौ, ग्रन्थः संकलितो मया।
जिनागमामृतैवाक्यै-र्भृतोऽयं मंगलं क्रियात्।।९।।

जिनागमरहस्याख्यो, ग्रन्थः स्थेयात् चिरं भुवि।
सम्यग्दर्शनशुद्ध्यर्थं, भवेत् भव्यहिताय च।।१०।।

जंबूद्वीपादि त्रैलोक्य-रचना जैनशासनम्।
यावत्तावदयं ग्रन्थः स्थेयान्मह्यं श्रियं क्रियात्।।११।।

१. तिथौ आर्षो।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय

1. **चैत्यभक्ति**—श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत है।

2. **निषीधिका दण्डक**–इस दैवसिक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत प्रतिक्रमण भक्ति में ''निषिधिक दण्डक'' आता है। इसमें प्रथम पद जो **''णमो णिसीहियाए''** है, उसका अर्थ टीकाकार ने 17 प्रकार से किया है।

इस निषीधिका दण्डक में श्रीगौतमस्वामी ने अष्टापदपर्वत, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी आदि की भी वंदना की है।

जब चारज्ञानधारी सर्वऋद्धि समन्वित गौतम गणधर इन तीर्थ क्षेत्रों की वंदना करते हैं, तब आज जो अध्यात्म की नकल करने वाला कोई यह कहे कि ''यदि साधु के तीर्थ वंदना का भाव हो जाये तो उसे प्रायश्चित्त लेना चाहिए। ऐसा कथन सर्वथा अनुचित है।

3. **वीरभक्ति**—सर्वज्ञ का लक्षण, धर्म का लक्षण आदि इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण विषय हैं।

4.**गणधरवलय मन्त्र**–बड़ा प्रतिक्रमण जो कि पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकरूप में किया जाता है। उसकी टीका के प्रारम्भ में टीकाकार कहते हैं–

''वृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि।।''

'श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं वृहत्प्रतिक्रमण–लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि''।

ये **''णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं''** आदि 48 मंत्र गणधरवलय मन्त्र कहे जाते हैं।। बृहत्प्रतिक्रमणपाठ में प्रतिक्रमणभक्ति में इनका प्रयोग है।

इन मंत्रों का मंगलाचरण धवला की नवमीं पुस्तक में है–

एवं दव्वट्ठिय जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म–पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियाणुग्गहट्ठमुत्तर सुत्ताणि भणदि।[1]

दूसरे सूत्र की उत्थानिका में विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय से जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्म प्रकृति प्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिक नय युक्त शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं–

णमो ओहिजिणाणं।।2।।

ये मंत्र आदि श्रीगौतमस्वामी द्वारा रचित ही हैं। इसके लिये षट्खंडागम आदि के प्रमाण देखिये—

षट्खंडागम में ये मंत्र 44 हैं और प्रतिक्रमण पाठ में 48 हैं।

(48) णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।।44।

वर्धमान बुद्ध ऋषि को नमस्कार हो।।44।।

शंका–जबकि वर्धमान भगवान् को पूर्व में नमस्कार किया जा चुका है तो फिर यहाँ दुबारा नमस्कार किसलिये किया गया है ?

1. धवला पुस्तक 9 पृ. 12।

समाधान— जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
कायेण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण[1]।।

'जिनके समीप धर्मपथ प्राप्त हो, उनके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये तथा उनका सिर झुकाकर पांच अंग–पंचांग एवं काय, वचन और मन से नित्य ही सत्कार–नमस्कार करना चाहिये।' इस आचार्य परंपरागत नियम को बतलाने के लिये पुनः नमस्कार किया गया है।

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में यह मंत्र ऐसा है–

णमो भयवदो महदिमहावीर वड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि।

जो भगवान सहज विशिष्ट मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञान के धारी और पूजा के अतिशय को प्राप्त हैं, महतिमहावीर और वर्धमान नाम के धारक अंतिम तीर्थंकर हैं, बुद्धर्षि–प्रत्यक्षवेदी–केवलज्ञान के धारी हैं। रुद्र के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतने से 'महतिमहावीर' यह नाम प्रसिद्ध हुआ है। इन अंतिम तीर्थंकर के वर्धमान, वीर, महावीर, सन्मति और महतिमहावीर ऐसे पांच नाम विख्यात हैं। ऐसे वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे।

5. **सुदं मे आउस्संतो!**—इसमें मुनिधर्म एवं श्रावक धर्म का वर्णन है।

6. **श्रावक प्रतिक्रमण**—इसमें पाक्षिक श्रावक से लेकर उत्कृष्ट श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक तक की ग्यारह प्रतिमाओं का प्रतिक्रमण है।

7. **दैवसिक प्रतिक्रमण**—मुनि–आर्यिका आदि जिस प्रतिक्रमण को प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल में करते हैं वह दैवसिक–रात्रिक प्रतिक्रमण है।

8. **पाक्षिक प्रतिक्रमण**—पन्द्रह दिन में होने वाला या चार महीना या वर्ष में होने वाला बड़ा प्रतिक्रमण है। अष्टमी क्रिया में होने वाली आलोचना–ये तीनों प्रतिक्रमण श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित हैं। यह रचनायें साक्षात् उनके मुखकमल से विनिर्गत हैं।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा–

''जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम।
सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

श्री गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

''श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्ट-देवताविशेषं नमस्करोति–

'श्रीमते वर्धमानाय नमो'' इत्यादि।

इस उद्धरण से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

---

1. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. 9 पृ. 103।

पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्‌गार[1]

पूज्यवर आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज ने अपने मुनिसंघ सहित वीर निर्वाण संवत् 2457 (सन् 1931) का चातुर्मास देहली नगर में किया था। उनके पुण्यमय दर्शन करने के लिए मैं भी देहली गया था।

उस संघ में मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी भी हैं। इन समस्त मुनिराजों को इन भक्तियों से सदा काम पड़ता रहता है कितनी ही भक्तियाँ तो प्रतिदिन बोलनी पड़ती हैं तथा कितनी ही विशेष-विशेष समय पर पढ़ी जाती हैं। इन भक्तियों के पढ़ते समय यदि इनका अर्थज्ञान हो, तो फिर और भी विशेष आनन्द आता है। इसीलिए इनके अर्थ जानने की मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी की प्रबल इच्छा थी। मुनियों की इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ सब धार्मिक ही होती हैं इसीलिए इन इच्छाओं की पूर्ति करना विशेष पुण्य का कारण समझा जाता है। यही समझकर मैंने वहाँ से आकर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह हिन्दी टीका लिखी है।

इन भक्तियों में अधिकतर भक्तियाँ पूज्यपाद आचार्यश्री 108 पूज्यपाद स्वामी की लिखी हुई हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कितने प्रौढ़ और प्राचीन उद्‌भट विद्वान् आचार्य थे, यह बात प्रायः समाज के समस्त जनसाधारण तक जानते हैं।

इन भक्तियों की एक संस्कृत टीका है जो आचार्य प्रभाचंद्र स्वामी की बनाई हुई है। उस टीका में चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि—

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी ''जयति भगवान्'' इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्‌द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम अग्निभूत वायुभूत नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम-अग्निभूति-वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने ''जयति भगवान्'' इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतमस्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग श्रुतज्ञान की रचना की।

इन दोनों कथनों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इन भक्तियों में से चैत्यभक्ति भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य गणधर भगवान् गौतम स्वामी की बनाई हुई है। इससे इसकी प्राचीनता और प्रौढ़ प्रमाणता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इस स्तुति में कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। जिसमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी आदि सब देवों के चैत्यालयों का तथा मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि यह मूर्ति पूजा जैनियों ने ब्राह्मणों से नहीं ली है किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है। जो लोग मूर्तिपूजा आदि को ब्राह्मणों से ली हुई बतलाते हैं, उनको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साथ में जो लोग जैन भूगोल को अप्रमाण और टीलों पर बैठकर लिखे हुए बतलाते हैं, उन्हें भी अपने नेत्र खोल लेना चाहिए।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है, अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं। बहुत से लोग कहा करते हैं कि ''वर्तमान के समस्त शास्त्र पंचमकाल के बने हुए हैं इसलिए उनमें कहा हुआ विषय भगवान महावीर स्वामी का कहा हुआ नहीं माना जा सकता'' ऐसे लोगों को भी अनर्गल बोलना बंद कर कुछ दिन तक जानकार विद्वानों से अध्ययन करना चाहिए।

यह हिन्दी टीका मैंने संस्कृत टीका के आधार से की है। तथापि प्रमादवश या अज्ञानवश इसमें जो कुछ स्खलन हुआ हो, उसे विद्वानों को सुधार कर बाँच लेना चाहिए।

-लालाराम जैन शास्त्री, मोरेना (म.प्र.)
फाल्गुन शु. 12, वी. नि. सं. 2458
(सन् 1932)

---

1. दशभक्त्यादि संग्रह (आचार्यवर्य श्री पूज्यपाद आदि विरचित) की प्रस्तावना से पृ. 3 से 6।